अंतर्भारतीय पुस्तकमाला

गुजराती एकांकी

संपादक
ए. एम. रावल
अनुवाद
शशि शर्मा

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया नयी दिल्ली

प्रथम संस्करण 1974 (शक 1896)
द्वितीय आवृति 1989 (शक 1910)

रु. 13.00

Original title : GUJARATI EKANKI (Gujarati)
Hindi translation : GUJARATI EKANKI

निदेशक, नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया, नयी दिल्ली-110016 द्वारा प्रकाशित एवं
लान्सर प्रेस, ए 3/1 मायापुरी फेज़ I, नयी दिल्ली-110064 द्वारा मुद्रित

भूमिका

गुजराती नाटक का इतिहास बहुत लंबा नहीं है। भारत की कई प्रादेशिक भाषाओं की तरह गुजराती में भी नाटक का प्रारंभ ब्रिटिश काल में अंग्रेजी साहित्य के संपर्क के बाद गद्य और उपन्यास जैसी साहित्यविधाओं के प्रारंभ के साथ ही पिछली शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हुआ है। मध्य काल में गुजराती में कुछ संस्कृत नाटक लिखे गये हैं और उनमें से कुछ नाटकों के प्रयोग भी हुए थे, किंतु जन-सामान्य की भाषा का नाट्यप्रकार तो 'भवाई' था। मलाबार का कथाकली, महा-राष्ट्र का ललित और दशावतार स्वांग, उत्तर प्रदेश की रामलीला, बंगाल-उड़ीसा की जात्रा और ब्रज-मथुरा की रासलीला की भवाई गुजरात का विशिष्ट लोकनाट्य है। पुराणियों की कथा, मानभट्टों का आख्यान, भाट-चारणों की लोककथाएं, मेला, भजन-मंडलियां, वृत्तोत्सव, कठपुतली के खेल, रास और गरबी की तरह ही मध्यकाल के लोक-जीवन को सरस बनाने में भवाई का भी बड़ा हिस्सा रहा है। नाटक के आगमन के पहले लोक-मंच पर गुजरात में भवाई ने उसका स्थान लिया है।

यह लोक-मंच गांव का खुला मैदान है। दर्शक उसके चारों ओर वर्तुलाकार बैठते हैं, बीच में भवाई के 'वेश' (खेल) होते हैं। वेश भवाई के नाट्य-प्रयोग की इकाई है। प्रत्येक इकाई एक छोटा-सा स्वतंत्र नाटक है। एक रात में कई 'वेश' खेले जाते हैं। इनमें नाट्य-वस्तु हल्की-फुल्की, कार्यक्रम और संवाद उसी समय रचे हुए होते हैं। बीच में अबोला, हरियाली, भाव के भजन और नीति-बोध की कविताएं आती हैं। लोक-नृत्य को इसमें संगीत जितना ही स्थान दिया जाता है। पात्रों की वेश-भूषा, अभिनय और संगीत-नृत्यों से, संवादों में ब्राह्मण, योगी, बनिया, फकीर, मीयां, राजपूत, सिपाही इत्यादि की पात्रोचित भाषा से तथा 'रंगला' या 'जूठन' के नाम से परिचित विदूषक पात्र के हास्य से प्रेक्षकों को दृश्य और श्रव्य का पर्याप्त मनोरंजन मिल जाता था। वेश की कथा-वस्तु कुछ अंशों में पौराणिक होते हुए भी अधिक सामाजिक होने के कारण उसमें कभी यथार्थ

और बहुधा हास्य के लिए अतिशयोक्तिपूर्ण समाजदर्शन आता था। साधारण लोगों द्वारा, साधारण लोगों के लिए रचे तथा प्रस्तुत किये गये भवाई के इस 'वेश' में शृंगार और हास्य दो रसों का प्राधान्य था जो सतहीपन के कारण कई बार स्थूल हो जाता था।

ब्रिटिश काल के अंग्रेजी शिक्षा द्वारा सृजित उदय काल में शिक्षित लोगों की रसवृत्ति के संस्कृत और परिवर्तित हो जाने के कारण 'भवाई' उनके लिए रुचिकर नहीं रही। बंबई की कंपनी-सरकार के कर्मचारियों तथा उनके मनोरंजन के लिए इंगलैंड से आयी हुई मंडलियों द्वारा प्रस्तुत किये हुए नाटकों ने नाटक का तथा उन नाटकों के प्रयोग के लिए स्थापित नाटकशालाओं ने नाटकशाला का मार्गदर्शन किया। बंबई में ऐसी नाटकशाला की स्थापना हो जाने से नाटकों की मांग बढ़ी। एलफिस्टन कालेज में अंग्रेजी नाटकों को प्रस्तुत करने वाले पारसी युवकगण शिक्षा समाप्त होने के बाद भी उस रुचि को कायम रखकर थियेट्रिकल क्लबों की स्थापना करने लगे। ये क्लब प्रारंभ में अंग्रेजी और उसके बाद अंग्रेजी नाटकों के पारसी रूपांतरों का प्रयोग करते थे। उनमें से ही गुजराती और उसके पश्चात् उर्दू नाटकों के प्रयोग करने वाली व्यवसायी पारसी नाटक मंडलियों का जन्म हुआ, जिनमें से कुछ भारत यात्रा करके नाटक और रंगमंच के प्रारंभ में प्रेरक बनीं। इसके पश्चात् उत्साही गुजराती हिंदू इस नये व्यवसाय के प्रति आकर्षित हुए और गुजराती नाटकों के प्रयोग करने वाली नाटक मंडलियों की स्थापना हुई। इस प्रकार गुजराती रंगभूमि का प्रारंभ हो जाने से मांग और पूर्ति के नियमानुसार नाट्य-लेखन को भी गति मिली। यूनिवर्सिटी की शिक्षा द्वारा शेक्सपीयर के अंग्रेजी और कालिदास, भवभूति इत्यादि के संस्कृत नाटकों ने नाटक के जिस साहित्यादर्श से शिक्षितों को परिचित कराया वह उनके लिए प्रेरणादायी और मार्गदर्शक बना।

प्रारंभकाल का गुजराती नाटक परंपरा प्राप्त भवाई के प्रभाव के साथ संस्कृत तथा अंग्रेजी नाटक के प्रभाव का त्रिवेणी-संगम दिखाता है। भवाई का प्रभाव 'रंगला' में और व्यावसायिक रंगमंच पर खेले जाने वाले नाटकों के 'कामिक' नाम से विख्यात प्रहसन तथा उसके हास्य रस में है। संस्कृत नाटक का प्रभाव उसके स्वीकृत 5, या उससे अधिक अंकों की संख्या, नांदी-सूत्रधार की प्रस्तावना प्रवेशक, विष्कंभक, गर्भांक, पताक, एतानक इत्यादि की योजना, दृश्यसूचन,

स्वगत, बीच में रखी जाती श्लोकात्मक कविता की पद्धति, नाटक का सुखांत और भरतवाक्य से उसकी समाप्ति के रूप में पाया जाता है। गुजराती नाटक ने ग्रीक या शेक्सपीयरी नाटकों की तरह पद्य का नहीं, किंतु पद्य मिश्रित गद्य का प्रयोग किया। यह भी संस्कृत नाटक का अनुकरण है। किंतु, संस्कृत नाटक की तुलना में पाश्चात्य नाट्य-प्रकार अनुकरण का आकर्षण अधिक उत्पन्न करते थे। नांदी-प्रस्तावना का त्याग, नाट्यवस्तु में बाह्यांतर संघर्ष का प्राधान्य इसी का प्रभाव कहा जा सकता है। 'एक्शन' प्रधान पात्र नाट्य-साधना के विषय बने। संस्कृत नाटक में निषिद्ध माना गया दुखांत, गुजराती नाटक में स्वीकारा गया। यह अंग्रेजी नाटक के प्रभाव का एक उल्लेखनीय परिणाम है। ट्रेजेडी की नाट्यविधा भारतीय परंपरा के लिए अपरिचित थी। यह नहीं कि संस्कृत नाटक जीवन के करुण तत्व को स्पर्श नहीं करते, किंतु 'अभिज्ञान शाकुंतलम्', 'उत्तर रामचरित' और 'मृच्छकटिक' जैसे नाटक करुण रस की मर्यादा को पार करते हुए भी समापन में सुखांत ही थे। पाश्चात्य प्रभाव की ही महिमा से 'कांता' जैसा सर्व प्रकार से संस्कृत नाट्यशैली का शिष्ट नाटक दुखांत बना।

सन् 1850 से 1900 तक गुजराती में नाटक के नाम से छपी हुई पुस्तकों में कई नौसिखियों के साथ दलपत राम, नर्मदाशंकर, नवलराम, रणछोड़भाई, उदयराम, मणिलाल द्विवेदी, हरीलाल ध्रुव, भीमराव दिवेटिया जैसे साहित्यकार भी थे। नाटक के नये साहित्यकार ने साहित्यकारों को कितना आकर्षित किया था इसका अंदाज इससे लगायाजा सकता है। गुजराती नाटक के उद्भव काल के प्रथम दो-एक सोपानों की उल्लेखनीय नाट्यकृतियों में 'मिथ्याभिराम' (दलपत राम), 'ललितादुखदर्शक' (रणछोड़भाई), 'वीरमति' (नवलराम), 'प्रतापनाटक' (गणपतराम), 'कांता' (मणिलाल द्विवेदी) को गिन सकते हैं। पहले जिसका उल्लेख किया वह 'भवाई', संस्कृत नाटक और शेक्सपीयरी नाटक का कुछ-कुछ असर पिछली शताब्दी के उत्तरार्ध के नाट्यकाल में कम-अधिक मात्रा में पाया जाता है। इस समयावधि में लिखे गये और प्रस्तुत किये गये नाटकों की वस्तु बहुधा पौराणिक, ऐतिहासिक और धार्मिक थी। उस युग में समाज-सुधार ने जिस नवजागृति को युगधर्म बना दिया था वह भी कई सामाजिक नाटकों की विषय-वस्तु बना है। नवोदित स्वदेश प्रेम की झांकी भी कुछ-कुछ नाटकों में पायी जाती है।

साहित्यकारों में से नर्मद, रणछोड़भाई, काबरजी और मणिलाल आदि के नाटक रंगमंच पर प्रस्तुत हुए हैं, किंतु व्यवसाय के रूप में सफल रंगमंच केवल साहित्यकारों की दया पर कब तक टिक सकता है ? नाटक की बढ़ती हुई मांग की पूर्ति के लिए एक विशेष लेखक वर्ग भी सामने आया। उनमें नत्थूराम शुक्ल, डाह्याभाई घोलशाजी, फूलचंद शाह, मूलशंकर मूलाणी, नृसिंह विद्याधर आदि की नाट्य-रचनाओं में संवादों और गीतों में कभी-कभी साहित्यिकता भी पायी जाती थी, किंतु समकालीन दर्शक वर्ग को प्रसन्न करने में सफल हुए नाट्य प्रयोगों ने व्यावसायिक रंगमंच को, उसके 'कवि' नाम से परिचित नाटक लेखकों को, तथा दर्शक वर्ग की रुचि को इस प्रकार बांध लिया था कि क्रमशः ऐसी परिस्थिति का निर्माण हुआ जिसमें साहित्यकारों के नाटक रंगमंच के योग्य नहीं रहे और रंगमंच के नाटक साहित्य के लिए अयोग्य समझे गये। रंगमंचीय और साहित्यिक नाटक के बीच जो दरार खड़ी हुई उससे दोनों को हानि उठानी पड़ी। साहित्यकार रंगमंच-तंत्र के जानकार नहीं थे इससे उनके नाटक मंच के लायक नहीं बन पाये और रंगमंच उनके साहित्य से वंचित रहा और प्रगति नहीं कर सका। सन् 1900 के बाद परिस्थिति उत्तरोत्तर ऐसी ही बनती गयी, हां, 1930 के बाद सिनेमा ने इसे बड़ी ठेस पहुंचाई, पर तब तक व्यावसायिक रंगमंच बहुत ही सफल और लोकप्रिय हो चुका था।

ऐसी परिस्थिति साहित्यकारों को नाट्य-लेखन की ओर लौटाने के लिए शायद ही प्रोत्साहक बन सके। फिर भी साहित्य क्षेत्र नाटक के प्रति बिल्कुल प्रवृत्ति शून्य नहीं रहा। 1900 से 1920 के दरम्यान संस्कृत और शेक्सपीयरी नाट्य-स्वरूपों के मधुर मिश्रण के परिपाक जैसा साहित्यिक नाटक 'राईनोपर्वत' (रमणभाई नीलकंठ) और डालन शैली नाम से उसके सृजक द्वारा प्रचलित की हुई रागात्मक गद्य शैली में लिखे गये रोमांटिक भावप्रधान काव्य कल्प नाटक 'इंदु कुमार–1' और 'जया अने जयंत' (कवि न्हानालाल) गुजरात को प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त कवि न्हानालाल ने इसी प्रकार की 10-12 और नाट्य रचनाएं की हैं। 1920 से 1930 के 10 वर्षों में गुजरात के अन्य दो समर्थ कवि 'कांत' और 'बलवंतराम ठाकुर' के नाटक प्रकाशित हुए। इनमें 'कांत' की नज़र व्यावसायिक रंगमंच पर विशेष रही है, किंतु ठाकुर ने उनके 'उगती जुबानी' नाटक में यथार्थ और आधुनिकता की ओर प्रयाण दिखाया है। आधुनिकता की ओर बढ़ने की यह

गति धीरे-धीरे बढ़ती गयी। धमाचौकड़ी से भरी कहानी, टेब्लो की तरह के दृश्य, मुख्य वस्तु से असंबद्ध किंतु हंसाने के लिए नाटक के लिए जोड़ा गया 'कामिक', अभिनय-संवाद इत्यादि की अतिनाटकीयता, काव्य तत्व विहीन किसी भी परिस्थिति में ठूंसे गये गीत, दर्शकों से 'वंसमोर' कहलवाने की तरकीबें—इस रूढ़ मनोरंजन सामग्री को लेकर आगे बढ़ते व्यावसायिक नाटक ने सुरुचि-संपन्न वर्ग में अरुचि उत्पन्न की और संस्कृत तथा शेक्सपीयर के नाटक प्रेरणा देने में असमर्थ हो गये। पिछली शताब्दी में यूरोप में इब्सन के हाथ से सफल सिद्धि प्राप्त समस्या प्रधान यथार्थवादी गद्य नाटकों ने तथा उसके पश्चात् विकास पाये हुए एकांकी के नाट्य-प्रकार ने हमारे युवा उत्साही लेखकों को इन संयोगों से आकर्षित किया यह स्वाभाविक ही है। बट्टूभाई उमरवाड़िया, प्राणजीवन पाठक और यशवंत पंड्या ने अपनी नाटिकाओं या लघु नाटकों में यह प्रभाव दिखाया। एकांकी की रचना का प्रारंभ इन्हीं के द्वारा हुआ।

गुजरात में शौकिया रंगमंच का उदय भी इसी समय हुआ। यह प्रारंभ नाट्य-रसिक और अभिनय निपुण सुरुचि संपन्न युवक-युवतियों के द्वारा साहित्यिक नाटकों की प्रस्तुति से हुआ। चंद्रवदन मेहता का योगदान इसमें बड़ा है, इन्होंने स्वयं अपने मित्रों के साथ नाटक खेले और इसके लिए कई नाटक स्वयं भी लिखे। चंद्रवदन मेहता की तरह ही और उनसे भी अधिक योगदान है कन्हैयालाल मुंशी का। दोनों ने विनोद प्रधान सुखांत और त्रासदी सभी नाट्य-प्रकार की अनेक रचनाएं लिखीं और शौकिया रंगमंच ने भी उसे उत्साह से प्रस्तुत किया। साहित्यिक और रंगमंचीय नाटक के बीच की दरार की पूर्ति के लिए इन दो नाटककारों की सेवा महत्वपूर्ण है। दोनों के नाटकों में रंगमंच संबंधी योग्यता पर्याप्त मात्रा में होने के कारण ही यह संभव हुआ। सन् 1930 के बाद शुरू हुए व्यावसायिक रंगमंच की दुर्दशा की परिस्थिति में शौकिया रंगमंच उत्तरोत्तर अधिक सक्रिय बनते गये। वह विकसित हुआ स्कूल-कालेजों के वार्षिक उत्सवों के कार्यक्रमों में मुख्य अंग बनते जाते नाट्य-प्रयोगों से तथा बंबई, अहमदाबाद, सूरत, बड़ौदा आदि शहरों में उदित सुरुचि संपन्न शौकिया नाट्य मंडलियों की गतिविधि से। व्यावसायिक रंगमंच की गिरती अवस्था से उत्पन्न शून्याकाश की पूर्ति के अतिरिक्त नाटकों के लेखन, प्रकाशन तथा अभिनय के लिए भी उसने नई परिस्थिति का निर्माण किया। अंतिम 35 वर्षों में लोकशिक्षा और जन-मनोरंजन

का एक महत्वपूर्ण सामूहिक माध्यम बना हुआ रेडियो भी नाट्य-सृजन के लिए शौकिया रंगमंच जितना ही उत्साहजनक सिद्ध हुआ है। परिणामस्वरूप अनेक प्रसिद्ध साहित्यकार तथा उत्साही नये लेखकों द्वारा अन्य भाषाओं से रूपांतरित और मौलिक रूप से लिखित नाट्य रचनाएं—लंबी तथा एकांकी—प्राप्त होती रही हैं, जिनमें से कुछ रंगमंच पर भी प्रस्तुत हुई हैं और गुजराती नाट्य-साहित्य लुंजपुंज होने से बच गया है।

लेकिन गुजराती कविता, उपन्यास तथा लघु कथाओं में जो सत्व तथा बाहुल्य है उसकी तुलना में नाटक कम महत्वपूर्ण हैं, किंतु कई भगिनी भाषाओं के नाटकों की भी यही कथा है। नाटक का साहित्य-स्वरूप ही इसका कारण है। यह एक ऐसा साहित्य-प्रकार है जिसे मंच पर प्रस्तुत किया जाता है, इससे प्राप्त सामूहिक आनंद में ही उसकी सार्थकता है, जिसमें साहित्य की कला के साथ लेखक के पास तीक्ष्ण नाट्य दृष्टि यानी कि अभिनय-दृष्टि, मंच-दृष्टि और रंगमंच-तंत्र की जानकारी अनिवार्य महत्व की बन जाती हैं और लेखक को हमेशा नेपथ्य में रहकर पात्र और नाट्यपूर्ण परिस्थितियों को अत्यंत किफायत तथा वैदग्ध्यता से प्रस्तुत करते हुए यथार्थ को साकार रूप देना होता है। अच्छा नाटक लिखना बहुत मुश्किल है, नाटक उत्कट साधना और बहुलता चाहता है। उसके साथ ही वह स्फूर्तिमय रंगमंच के सहयोग के बिना संपूर्ण रूप से खिल नहीं सकता।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है गुजराती एकांकी का प्रारंभ 1921 से 1930 के बीच, यानी कि बंगाली, मराठी और हिंदी जैसी भगिनी भाषाओं में उसका अवतरण हुआ, उससे 10 वर्ष पूर्व हो चुका था। ऊपर जिस शौकिया रंगमंच तथा रेडियो की सहायता की बात की गयी है उसका लाभ 1930 के बाद के वर्षों के एकांकियों को मिला है, प्रारंभकाल के एकांकियों को नहीं। प्रारंभिक प्रयोगों का यश तो उसके लेखकों की सृजकता को मिला है। यह माना जाता है कि आस्कर वाइल्ड, गाल्सवर्दी, शा इत्यादि के नाटकों के पठन के परिणाम से उसी तरह के नाटक लिखे गये। गुजराती एकांकी, उसके प्रथम प्रयोजक बट्टूभाई उमरवाड़िया के अनुसार, संस्कृत नाटक के एकांकी प्रकारों के या 'भवाई' के कुल के नहीं हैं। उनका संबंध पश्चिम के एकांकियों से है। पाश्चात्य एकांकी मध्यकालीन यूरोप के यीशूलीला के और नीतिबोधक 'मिस्ट्री', 'मिरेकल' और 'मोरेलिटी' के नाम से परिचित उप-रूपक 'इंटरल्यूड' नामक अंतर्नाटिका और मुख्य नाटक के पहले

तथा बाद में प्रयोजित पटोद्घाटक (कर्टेनरेजर), उपसंहार (आफ्टर पीस) का काम करते लघु नाटकों के बाद स्वतंत्र व्यक्तित्व प्राप्त वंशज हैं। आयरलैंड की साहित्यिक हवा से इसे लाभ हुआ और उससे पोषित-विकसित इस लघु नाट्य-प्रकार को 'लिटिल' और 'आर्ट' थियेटरों की प्रवृत्ति ने लोकमान्यता एवं साहित्य-प्रतिष्ठा प्रदान की। बट्टूभाई उमरवाड़िया जैसे प्रारंभकाल के एकांकीकारों ने एकांकी के लिए एक अंक की मर्यादा स्वीकार की लेकिन उसे आवश्यकतानुसार 4-5 दृश्यों में बांट दिया। पिक्चर-फ्रेम मंच ने तथा यथार्थ के आग्रह ने रंगमंच पर यथार्थवादी दृश्य-सजावट की आवश्यकता को जन्म दिया और चूंकि यह वास्तविक दृश्य-सजावट अत्यंत खर्चीली थी, अत: कम-से-कम दृश्यों में नाटक को समाप्त करना व्यवहार की दृष्टि से आवश्यक बन गया। उसके साथ नाटक में कला विधान भी सस्ता होता गया। त्रिअंकी नाटक दो या तीन सेट में समाप्त होने लगे तो एकांकी के छोटे स्वरूप के लिए एक ही सेट का, यानी एक ही स्थल का और एक ही समय का आग्रह रखा जाना प्रयोग की सुविधा और एकांकी के लाघव और सुग्रथित नाट्यबंध के लिए स्वाभाविक लगने लगा। इसके कारण पाश्चात्य एकांकी एक स्थलांकी बनने लगा जिसमें स्थल, समय और कार्य की त्रयी का प्रयोग हुआ। प्रारंभकालीन गुजराती एकांकीकारों की दृष्टि इब्सन के नाटकों पर रहने के कारण उन्होंने ऐसे अंकों को दृश्य बनाकर उसका लघु रूप प्राप्त करने जितना ही पुरुषार्थ किया, किंतु 1930 के बाद के एकांकीकार पश्चिम के एक स्थलांकी नाटकों के मेरियट और मायोर्गा के वार्षिक संग्रह तथा मूल पुस्तक के पठन के प्रभाव से अपने एकांकी को उसी तरह का रूप देने लगे। अनिवार्य रूप से आवश्यक कम-से-कम पात्रों द्वारा काम लेने के साथ नाटक के वातावरण का सृजन करने वाले कार्य-साधक संवादों की सफाई और कृति को सुगठित एकता प्रदान करने वाला लाघव कौशलमय कला विधान 1930 के बाद के गुजराती एकांकीकारों का विषय किस प्रकार बना उसका उदाहरण प्रस्तुत पृष्ठों में दिये गये एकांकी स्वयं ही दे देंगे। रेडियो तथा विद्युत की सुविधा द्वारा निखरी हुई प्रकाश आयोजन की कलात्मकता ने एकांकी के सिर से एक ही दृश्य में सारी लीला रचने का स्वैच्छिक बंधन उतार दिया और उसे मुक्त करके एक्शन का लाभ दिया। एकांकी के नाट्य-स्वरूप द्वारा प्राप्त विकास का यह अंतिम सोपान है। नाट्य-वस्तु के वर्तमान को अतीत के साथ जोड़ने के लिए

सिनेमा और रेडियो में जो पूर्वदीप्ति (फ्लैश बैंक) का प्रयोग होता है और विभिन्न देशकाल प्रस्तुत करना आवश्यक बन जाता है, भिन्न दृष्टियों की रचना न करके रंगमंच, प्रकाश-आयोजन तथा आधुनिकतम तरीकों की सहायता आज के एकांकीकार किस प्रकार लेते हैं यह दिखाने के तीन नमूने इस संग्रह में उपलब्ध हैं।

नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया ने देश की विराट जनता की भावात्मक एकता के लिए आदान-प्रदान की पुस्तकें प्रकाशित करने का जो प्रयास शुरू किया है उसके अंतर्गत निर्धारित पृष्ठसीमा में कुछ प्राचीन और कुछ नये एकांकीकारों की रचनाएं इस संग्रह में ली गयी हैं। अन्य साहित्य स्वरूपों से उम्र में कम एकांकी के स्वरूप को गुजरात की सृजकता ने किस प्रकार स्वीकार किया और गुजराती एकांकी द्वारा किये हुए विकास और समृद्धि का दर्शन हो सके, साथ ही विभिन्न समय-संदर्भ में गुजरात का पृष्ठचित्र सर्वांग रूप से उभर आये, यही दृष्टि इस संग्रह में रखी गयी है। किंवदंती और इतिहास के अस्पष्ट संधिकाल की दो तेजस्वी गुर्जर रमणियों के प्रतापी व्यक्तित्व को नाट्य-विषय बनाने वाली दो रचनाएं सबसे पहले रखी गई हैं। इनमें से पहली रचना 'मैनागूजरी' उसके पंडित सृजक ने पुराने लोकगरबा से अपनी कल्पना के बल पर लिखी है इसके बाद है शिवमोहिनी के पौराणिक प्रसंग में से 40 वर्ष पहले एक कुशल युवा नाट्यकार द्वारा सृजित आज के एकांकी-स्वरूप के निकट आती हुई कृति 'झाकड़नू मोती', यह है पौराणिक वस्तु का अर्वाचीन रूप। 'हंसा' एकांकी से पाठक अर्वाचीन समय में प्रवेश करेंगे। इसमें दांपत्य की एक समस्या नये जमाने के मनोवैज्ञानिक रस को तृप्त करती हुई एकांकी के माध्यम द्वारा आल्हादक रूप में प्रस्तुत है। इस नाटक के तथा 'मैनागुर्जरी' के 5-5 दृश्य गुजराती एकांकी की प्रारंभिक अवस्था का निदर्शक हैं। 'हंसा' के बाद है 'पड़घा'। इसके लेखक हैं श्री उमाशंकर जोशी जो प्रथम प्रयत्न में ही एकांकी कला में उल्लेखनीय सिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। इस एकांकी में भी दंपति है, किंतु वह पीछे रह जाते हैं और आगे आते हैं उनके उद्गार और व्यवहार के अंदाज या प्रतिघोषित बच्चों का निर्दोष खेल, जीवन निर्वाह के लिए बंबई की चाल में आकर बसे हुए निम्न मध्यम श्रेणी के मनुष्यों के नगर-जीवन के साथ बच्चों के खेल के उद्गारों द्वारा प्रतिघोषित वह मनुष्य जिसे 'देश' कहते हैं। परिवेश का लोकजीवन तथा मनोविज्ञान इस नाटक को

समाजदर्शी भी बना देता है। यह उसकी खूबी है। यथार्थोन्मुख समाजदर्शन के साथ ही उसके सारे शुभ-अशुभ पहलू और मानवीय वृत्ति-व्यवहार के यथार्थ निरूपण की कुशलता इसके बाद संग्रहीत 4 एकांकियों में दिखाई देगी, जिनकी एक और विशिष्टता है स्वाभाविक रंग और बोली की, जो इन कृतियों के संवाद तथा उसको बोलने वालों को यथार्थ की जीवंतता प्रदान करके नाटक के अभीष्ट वातावरण का सृजन करती है। रंगमंच के तथा अंधकार-प्रकाश के आयोजन से धरती के और चित्रगुप्त के दरबार के दृश्यों को मिलाकर एक दूसरे के पास तथा एक के बाद सजा कर समाज में सेवाभावी और उदार गृहस्थ माने जाते उच्च-वर्ग के परदे के पीछे के वास्तविक पहलू का अनावरण करने वाले तथा बाइबल में उच्चवर्ग के लिए लिखी गयी ईसा-उक्ति में से शीर्षक लेकर लिखा गया एकांकी है 'सोइनूनाकू', जिसके लेखक हैं जयंती दलाल। स्वास्थ्य के लिए हमारी जनता को आंदोलन के कारण 1930 और 1942 के दरम्यान तथा स्वतंत्रता-प्राप्ति के साथ विभाजन के कारण जो यातनाएं भुगतनी पड़ीं और उसमें से गुजरते हुए हमारी किशोर तथा युवा पीढ़ी की पराक्रमी भावना को वस्तु-विषय बनाते हुए तीन एकांकियों को अंत में एक साथ स्थान दिया गया है। तीनों अपने शीर्षकों को किस प्रकार सार्थक करते हैं यह समझदार पाठक उन्हें पढ़कर समझ सकेंगे। अंतिम कृति में पात्र और भूमि भले ही बंगाल की है उसका सृजक तो कलकत्ता निवासी गुजराती है।

वस्तुतः इस संग्रह में पृष्ठभूमि के रूप में गुजरात आया है लेकिन देश के अन्य प्रदेशों से वह भिन्न नहीं है। संग्रह की सामग्री भाषांतर द्वारा भगिनी भाषाओं के प्रदेशों में पहुंचेगी तब वहां के पाठकों को इसमें निरूपित जीवन और लोगों के प्रति आत्मीयता या आत्मक्ता का अनुभव होगा इसमें कोई शक नहीं है। इसमें संकलित एकांकी की कलात्मकता की अन्य भाषाओं के एकांकियों से तुलना की जा सकती है। यहां प्रस्तुत की गयी सामग्री की कलात्मकता की जांच करने का कार्य अन्य भाषाओं के सहृदय पाठकों पर छोड़ दिया है। इस तरह की पारस्परिक तुलना से साहित्य के उभय पक्ष को लाभ होगा। मुझे इसमें निमित्त बनाने के लिए मैं नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया का अत्यंत आभारी हूं।

—ए. एम. रावल

अनुक्रमणिका

मैना गूजरी

—रसिकलाल छोटालाल पारीख

पात्र

मैना

रूपा

अमथीकाकी

मैना की सास

शोभा

अन्य स्त्रियां

शहज़ादा

हीरा

युवक और ब्राह्मण

अन्य ग्राम-जन

दृश्य 1

(कुएं की मेंड़ पर गूजरियां पानी भर रही हैं। उनके झुंड से सारा कुआं घिरा हुआ है। कुछ आ रही हैं तो कुछ जा रही हैं। सुंदरियों के कोलाहल से दृश्य बड़ा सुहावना लग रहा है।

भिन्न-भिन्न आयु की गूजरियां, जिनमें अधिकांश युवतियां हैं, मटके उतारकर सामने राह देखती हुई किनारे पर बैठी हैं। पास ही फूलों से लदा चमेली का पेड़ है। फूल चुनती हुई एक लड़की, जिसका नाम रूपा है, गा रही है।)

रूपा : 'कुएं की मेंड़ में चमेली के फूल उगे हैं मेरे बालम।
चमेली झुकी जाये कि चमेली ले ले मेरे बालम।'

अमथीकाकी : अरी रूपा, किस बालम के लिए फूल चुन रही है?

रूपा : अमथीकाकी, तुम बूढ़ी हो गयी पर मजाक करने की आदत नहीं गयी। आदमी जो गाता है क्या वही सब करता है?

अम. : हमारे जमाने में जो कुछ होता था वह तो कवि भी नहीं सोच सकता है। तुम आजकल की क्या जानो?

रूपा : अमथीकाकी, जब तुम छोटी थीं तब किस बालम के लिए फूल चुनती थीं?

अम. : तुझे इससे क्या मतलब? हमने जो किया वो किया। पर हमारा जमाना और था। देख उधर खाली हो गया, जा, मटका भर ले और सुन जरा मेरा मटका भी भर दीजो। रात से कमर में दर्द हो रहा है, पानी खिचता नहीं। **(रूपा अमथीकाकी के पास फूल रखकर पानी भरने जाती है। शोभा पानी भरकर अमथीकाकी के पास आती है।)**

अम. : शोभा! थोड़ी देर बैठ। रूपा आये तो मैं जाऊं।

शोभा : काकी, मुझे जरा जल्दी है। अगर लड़का रो रहा होगा तो सास मेरी खबर लेगी।

अम. : अरी बैठ भी जा। तेरी सास क्या इतनी सी देर भी लड़का नहीं रख सकती? मैं कह दूगी कि मैंने रोका था।

(शोभा मटका उतार कर फूल चुनती है तथा गाती है ।)

शोभा : 'कटोरी में केसर भिगोया मेरे बालम ।
रंग से रंग मिला मेरे बालम ।'

अम. : क्यों री । आजकल तुम लोग बालम की बातें बहुत करती हो । क्यों, शादी से खुश नहीं हो क्या जो बालम को ढूंढ़ती फिरती हो ।

शोभा : **(हंसती हुई)** : काकी शादीवाला बालम नहीं होता क्या ? तुम्हारे जमाने में प्रियतम और बालम अलग-अलग होते थे, है ना काकी ?

अम. : चल हट रहने दे । मेरा और तेरी सास का जमाना अलग था क्या ? कह कर देख अपनी सास को ।

शोभा : **(फूल चुनकर अमथीकाकी के आगे रखती है)** अमथीकाकी, अपने और रूपा के फूलों की माला बनाकर तुम्हें पहनायेंगे । तुम हो हमारे बालम ।

(रूपा आती है । रूपा से) रूपा, ये तेरे और मेरे फूलों की माला अमथी-काकी को पहना दे । अमथीकाकी हमारे बालम हैं ।

अम. : बस रहने दे । देख रूपा ने तो मेरा मटका भरा, तू उसे जरा यहां ला दे ।

रूपा : **(मटका लेने जाती हुई शोभा से)** शोभा, अरी तूने सुना कि नहीं, सारी औरतें क्या कह रही हैं ?

शोभा : **(जाते-जाते खड़ी हो जाती है)** क्या ?

रूपा : दिल्ली के बादशाह की छावनी का पड़ाव अपने गढ़ से थोड़ी दूर बाग में पड़ा है ।

शोभा : नहीं, वो बादशाह तो अपने गढ़ को घेरने आ रहा है ।

रूपा : नहीं, नहीं, वो तो काबुल से आया है और दिल्ली जायेगा । रास्ते में पड़ाव डाला है ।

अम. : **(दोनों को बातों में लीन देखकर)** अरी शोभा, अब देर नहीं हो रही ? अब तेरी सास नहीं लड़ेगी ?

(शोभा अमथीकाकी का घड़ा लेकर आती है । तीनों नजाकत से अपने-अपने घड़े उठाती हैं और तीनों पनिहारिनें साथ-साथ चलती हैं ।)

रूपा : अमथीकाकी, दिल्ली के बादशाह की छावनी देखी है ?

ग्रम. : हमने तो बहुत देखी है । पर हमारा जमाना कुछ ग्रौर था ।

शोभा : **(लाड़ से किंतु डरते-डरते)** ग्रमथीकाकी, क्या हम नहीं देख सकते ?

ग्रम. : नहीं हमारे दिन ग्रौर थे । उसमें तो वो...

रूपा : **(जरा ग्रौर निर्भय होकर)** ग्रगर बेशरम हो जायें तो हम भी जा सकते हैं । पर हमें जाना ही नहीं ।

(सामने से तीन पनिहारिनें दूसरी पंक्ति में ग्राती हैं । एक गाती हुई ग्राती है । उनमें से पतली—सौंदर्य प्रतिमा मैना गूजरी बीच में है । जाती-ग्राती स्त्रियां ग्रामने-सामने मिलती हैं ।)

— मैना, सुना है कि बादशाह की छावनी ग्रा गयी है ।

(सब खड़ी रहती हैं)

मैना : हां ! हां ! तुझे किसने कहा ?

रूपा : कुएं के पास सब ग्रौरतें बातें कर रही थीं । तुझसे किसने कहा ?

मैना : मेरे देवर ने । वह घुड़सवारी करने गया था तो वहां से खबर लाया कि बादशाह की छावनी देखने लायक है ।

शोभा : मैना, तेरा तो वो लाड़ला देवर है न ? देखने जायेगी ?

ग्रम. : तुम ग्राजकल की बहुग्रों से नहीं जाया जायेगा । वो हमारे दिन ग्रौर थे ।

मैना : ग्रमथीकाकी, हमसे क्यों नहीं जाया जायेगा ? मैं देखने जा रही हूं । **(ग्रपने साथ की स्त्रियों से)** क्यों री सुखा । ग्रपन लोगों ने जाने की सोची है न ? क्यों दुल्हा ?

रूपा ग्रौर शोभा : तब तो हम भी ग्रायेंगे । **(ग्रानंद की लहर में सिर पर मटका होने पर भी जरा नाच का ठुमका लगाकर)**

— "चलो देखने जायें रे ।"

ग्रम. : ग्ररी, मटके रास्ते में रखकर तो नहीं जाने वाली ? उस छावनी में तुम्हारा काम नहीं है, उसमें तो...

शोभा : सुखा, दुल्हा **(नकल उतारती हुई)** उसमें क्या है ? हम सभी देखने जायेंगे ग्रमथीकाकी ।

ग्रम. : **(चिढ़कर)** तुम जाकर देखो, देखूं तो कैसे जाती हो ? ग्रभी तुम्हारी सासुग्रों से जाकर कहती हूं ।

रूपा-शोभा : **(ग्रमथीकाकी को सुनाते हुए)** तो तुम ग्रपने रास्ते जाग्रो ।

मैना, जा घड़ा भर आ। हम यहीं खड़े हैं।

अम. : (लगता है इन जवान औरतों को अपनी उम्र की जरा भी कद्र नहीं। अंत में ताना मारते हुए)

अरी, तो इसमें मुंह चिढ़ाने की क्या बात है? तुम्हारे पति जाने दें तो जाओ, और बन जाओ बादशाह की बीवियां। इसमें मुझे क्या? कोई आनेवाला होगा तभी तो ऐसे अकेली खड़ी हो।

मैना : (अमथीकाकी भारी विघ्न डालेगी यह सोचकर चतुराई से)

अमथीकाकी, ऐसा क्यों कहती हो? तुम मना करोगी तो क्या हम चले जायेंगे? पर अमथीकाकी, तुम और मेरी सास उस दिन छावनी देखने गयी थीं ना? **(अमथीकाकी ने ऐसी मुखमुद्रा बनायी जैसे उन्होंने ऐसा काम कभी नहीं किया हो।)** अरे, तुम ही तो उस दिन कह रही थीं कि तुम और मेरी सासु एक दिन चुपचाप छावनी देखने गयी थीं? तुम कैसे गयी थीं, यह बताना ही पड़ेगा। मैं घड़ा भरकर तुम्हारे घर आती हूं। फिर कैसे नहीं बताओगी? **(रूपा-शोभा से)** जाओ री। अमथीकाकी को उनके घर पहुंचा आवो **(समझाने के लिए इशारा करती है)**

(पानी भरने वाली औरतों की एक टोली जाती है तो दूसरी आती है। दोनों टोलियां नृत्य की ताल पर चलती हैं। मैना गूजरी गाती है)

(देखने जाने का उत्साहजनक नृत्य)

'आया है काबुल से चढ़कर सारी दिल्ली का दीवान रे।
कि बादशाह रे उतरा बाग में क्या मैं देखन जाऊं रे।'

दृश्य 2

(मैना गूजरी तथा उसकी सखियां छावनी देखने निकली हैं। सुबह के लगभग आठ-नौ बजे होंगे। उनके मुख पर श्रम की थकान है। बासंती सूर्य की लालिमा से उनके चेहरे रक्तिम हो उठे हैं। यद्यपि उनके शृंगार तथा वस्त्रादि धूल से सने हुए हैं फिर भी उनकी अपनी शोभा है।

सब गूजरियां दही बेचने जाती हैं। प्रत्येक के सिर पर दही की मटकियां हैं। मैना गूजरी के सिर पर लाल मटकी है। मैना गूजरी गीत उठाती है और शेष सब उसका साथ देती हैं।)

मैना : 'जागा गूजर देश भाण कि गूजरी । पूजना रे लोल
जाने केसरिया रे बान कि......
वो तो गूजर कैसा वीर कि......
पहनया केसरिया रणधीर कि......
आंबी पे आई बौर कि......
जैसे गूजर का फेंट कि......
वो तो कड़वा मीठा होय कि......
जैसे गूजरवा क्यों लहके कि......
वहवे मीठी वायु आज कि......
बंधे न बांधे कभी कि......
वायु बांधे चक्कर कि......
बांधे गूजरी फेरा कि......

रूपा : क्यों मैना, गीत अधूरा छोड़ दिया ? पूरा कर ना । अभी छावनी दूर है ।

मैना : आगे मुझे याद नहीं आ रहा ।

रूपा : मैना को गीत याद न आये ये कैसे हो सकता है ?

अन्य गूजरियां : कभी नहीं हो सकता ।

रूपा : (**मैना के आगे आती है और वापिस मुड़कर उसके चेहरे के सामने देखती है**) मैना, देर कैसे हो गयी ? कुछ सुना ?

मैना : कुछ नहीं सुना ? आओ, वहां आम की छांव तले मटकी उतार कर आराम करें ।

(आम के पेड़ के नीचे मटकियां उतारती हैं । सब कपड़े के छोर से मुंह पोंछती हैं । प्रत्येक स्त्री अपने पास एक कटार तथा एक जहर की डिब्बी, जिसे 'सत की डिब्बी' कहते हैं, वस्त्रों में छुपा लेती है । मैना अकेली आम के पेड़ के नीचे छावनी की ओर देख रही है । रूपा और अन्य गूजरियां मैना के आसपास खड़ी हैं ।)

रूपा : मैना, तू है इसलिये हम सब दही बेचने के बहाने छावनी देखने आ गये । अरे, तू ऐसी उदास क्यों हो गयी ?

शोभा : मैना, तेरी सासू ने आते हुए कुछ कहा था ?

रूपा : कुछ याद आया ?

मैना : **(आवेश में आंसू आ जाते हैं)** मेरी सास ने ताना मारा। पर इससे क्या मैं उसको देखने नहीं जाऊं ?

शोभा : क्या कहा ?

मैना : यही कि मैना तो बादशाह की बेगम बनेगी। इसीलिए छावनी जा रही है।

रूपा : फिर तूने क्या कहा ?

मैना : मैंने कहा, क्यों अपने लड़के का अपमान करती हो ?

रूपा : फिर ?

मैना : कड़क कर फिर उन्होंने वही कहा। मैंने कहा...

शोभा : क्या कहा ?

मैना : कुछ नहीं।

रूपा-शोभा : तो भी ?

मैना : मैंने कहा, तुम्हारे लड़के में पानी होगा तो मैं बादशाह की बेगम क्यों बनूंगी ? और अगर मुझे पकड़ लेगा तो क्या वो छुड़ा नहीं लायेंगे? या मेरा ये हीरा देवर छुड़ा लायेगा। **(कुछ देर बाद गंभीर होकर)** मुझे सासू के ताने की तो परवाह नहीं; पर इस कहा-सुनी में सिंगार करते हुए एक अपशुगन हो गया। मुझे वो अपशुगन याद आ गया। पर कुछ नहीं। चलो हम चलें।

(मैना कपड़े ठीक करके कटार और सत की डिबिया बाहर निकालने लगती है। लेकिन दोनों ही चीजें घर भूल आती है।)

मैना : रूपा, मेरी कटार और डिब्बी दोनों घर रह गयीं। अपशुगन शुरू हो गया **(कुछ देर बाद)** रूपा, तुम सब छावनी देख आओ और दही बेच आओ।

रूपा-शोभा : और तू मैना ?

मैना : मैं यहीं पर आम तले तुम्हारी बाट देखती हूं।

रूपा : ऐसा कैसे हो सकता है ? तेरे लिए ही तो हम सब यहां आये हैं और तू ही मना कर रही है ?

मैना : मैं नहीं चलूंगी। **(कुछ आवेश में आकाश की ओर देखते हुए)** मेरी कटार और सत की डिब्बी दोनों रह गये। दोनों में से एक भी मेरे पास होती तो मैं जरूर चलती **(नरम होकर)** रूपा, तुम सब जाओ। रूपा तू मेरी मटकी

का दही बेचती आइयो। मटकी बहुत भारी नहीं है। मेरी अच्छी बहन।

(सब गूजरियों का मन भारी हो जाता है)

शोभा : मैना, हम तेरे बिना कैसे जा सकते हैं ?

मैना : न देखने जाओ तो तुम्हें मेरी कसम है। तुम मुझे सब बातें बता देना। गांव में किसी को पता भी नहीं चलेगा कि मैं छावनी देखने नहीं गयी। फिर कभी चलूंगी। तब कटार और सत की डिब्बी नहीं भूलूंगी—और फिर छावनी क्या भागी जा रही है ? तुम जाओ। तुम्हें मेरी कसम है जाओ न।

(रूपा मैना की मटकी लेती है और सब ग्वालिनें धीरे-धीरे छावनी की तरफ जाती हैं।)

(मैना एक महुए के पेड़ के नीचे खड़ी हुई अपनी सखियों को जाते हुए देखती है। अंत में सब सखियां छावनी में अदृश्य हो जाती हैं। तब महुए की मादक सुगन्ध की ओर उसका ध्यान आकर्षित होता है और मानो इस मादक गंध से ही उसके शरीर में कंपकपी आती है। मंजरी से भरी डाली की तरफ मैना देखती रह जाती है। फिर दुबारा छावनी की ओर देखती है।)

मैना : (बड़बड़ाती है) मेरी कटार और मेरी डिब्बी दोनों रह गयीं।

(छावनी की तरफ से रूपा को अपनी लाल मटकी लिए हुए एक तुर्क सैनिक के साथ अपनी ओर आते हुए देखती है। मैना चकित रह जाती है। थोड़ी दूर पर तुर्क तथा रूपा खड़े हो जाते हैं। रूपा को अपने आगे करते हुए तुर्क मैना को मुग्ध दृष्टि से ताकता है। दोनों छावनी में अदृश्य हो जाते हैं।

थोड़ी देर पश्चात् मैना घोड़े पर बैठे एक युवक को लाल मटकी लिए हुए अपनी ओर आते देखती है। युवक घोड़े से उतरकर मटकी लिये उसके पास आता है। अपने सादे वेश में शहजादा राजसी शान से मैना की ओर देखता है। सिर पर मुसीबत आयी जानकर अपने पर काबू रखते हुए मैना आकृति से स्वस्थ भव्यता का प्रदर्शन करती है।)

मैना : (बड़बड़ाती) मेरी कटार और डिब्बी दोनों रह गयीं।

शहजादा : यह मटकी तुम्हारी है ?

मैना : हां, बादशाह।

शहजादा : (मुस्कराते हुए) तो लाल मटकी की ग्वालिन। तुमने हमारी छावनी का शृंगार क्यों नहीं किया ?

मैना : बादशाह । मैं थक गई थी इसीलिए अपनी सहेलियों को दही बेचने भेज दिया । हमें तो दही बेचने से मतलब है ।

(मैना के हाथ कटार और सत की डिब्बी खोजते हैं, किंतु व्यर्थ ।)

शहजादा : अगर तुम्हें दही बेचने से ही काम है तो क्यों नहीं आयीं ? मुंह-मांगे दाम मिलते ।

मैना : बादशाह । मुझे मुंह मांगे दाम नहीं लेने । जो सबको मिले वही मेरे लिये काफी हैं । आपने दही निकाल लिया हो तो मुझे मेरी मटकी वापिस दे दो ।

शहजादा : मटकी तो खाली है । लेकिन दाम लेने तो छावनी में आओगी न ? उसकी कीमत क्या है ?

मैना : जो सबको दिया हो वही दाम मेरी सखी को दे देना ।

शहजादा : पर सबके साथ तुम्हारी तुलना कैसे हो सकती है, ग्वालिन ?

मैना : सबका दही एक जैसा है, बादशाह ।

शहजादा : **(एक कदम पास आता है)** दही एक जैसा होगा पर ग्वालिन तो एक जैसी नहीं ?

मैना : **(एक कदम पीछे हटकर)** बादशाह, तुम इंसान हो या हैवान ?

शहजादा : **(मानो उसे ऐसे जवाब की आशा नहीं थी और न ही आदत)** अरी औरत । तू होती कौन है मुझे जवाब देने वाली ?

मैना : हम लोग गूजरों की बहुएं हैं ।

शहजादा : **(कामवश अपमान और अभिमान के शब्द भी उसे आकर्षक लगते हैं)** तुम्हारा नाम ?

मैना : मैना गूजरी ।

शहजादा : तुम्हारी सखियां कह रही थीं कि तुम केवल दही बेचने ही नहीं आयी, हमारी छावनी भी देखने आयी थीं । हमारी छावनी देखने लायक है ।

मैना : **(हाथ से कटार टटोलती है)** तुम्हारी छावनी देखने लायक होगी, पर हमें तो हमारा गढ़ मांडल ही प्यारा है ।

शहजादा : मैना ग्वालिन । थक गयी हो तो पालकी मंगाऊं । तुमने कभी हाथी नहीं देखा होगा ?

मैना : बादशाह । हम ग्वालिनों को हाथी से क्या काम ? हमें तो सवा मन

दूध देती भैंसों से काम है और पालकी तो परदे में रहने वाली औरतों को चाहिए, हम हवा के पंछी गूजरियों को नहीं।

शहजादा : अरे, हमारे हरम में बहुत हिंदू औरतें हैं।

मैना : **(गुस्से में भी आवेश पर काबू पाते हुए)** बादशाह। तुम राजा हो और हम प्रजा। प्रजा से भला-बुरा सुनना अच्छा लगता है ? हैवान कहलवाने में तुम्हें तसल्ली नहीं हुई ?

शहजादा : इसमें क्या ? सब इंसान हैवान हैं।

मैना : गूजर हैवान नहीं होते, तुम होगे।

शहजादा : अरे मैना रानी, गूजरों से ऐसा क्या मोह है ? हमारे महल में आओगी तो सब भूल जाओगी। सब हिंदू औरतें भूल जाती हैं।

मैना : **(आवेश पर काबू खत्म होता जाता है)** बादशाह ! इस समय तो मैं अकेली हूं। लेकिन मैं अकेली नहीं हूं, मेरे पीछे नौ लाख गूजर हैं। **(आवेश में आती है मानो कोई शक्ति सिर पर सवार हो)**

'कि तू न जानियो अकेली मेरे गूजर चढ़े नौ लाख रे।'

(देवी का अद्भुत नृत्य करते हुए यह पंक्ति अनेक बार दोहराती है। शहजादा यह दृश्य देखकर चकित रह जाता है। पर वह जानता है कि हिंदुओं में ऐसा होता है इसलिए उसे भय नहीं लगता। गूजरी तुरंत ही शान्त होती है, किंतु उसकी आंखें चढ़ जाती हैं।)

शहजादा : **(हंसकर)** शहजादों को किसी का डर नहीं होता...दुनिया की हूरें हमारे लिए हैं !

(मैना के हाथ कटार खोजते हैं, यह देखकर) क्या खोज रही हो, मैना गूजरी।

मैना : कटार।

शहजादा : **(जरा पीछे हटकर)** किस लिए ?

मैना : क्यों, तुम तो किसी से डरते नहीं हो ? मेरी कटार रह गयी थी इसीलिए बादशाह तुम्हारी छावनी में नहीं आयी। **(पुनः आवेश में)** अब लाओ अपनी कटार, फिर छावनी देखने आऊंगी और तुम्हें कालका का खेल दिखाऊंगी।

(शहजादा सोचने लगता है)

क्यों, क्या सोच रहे हो ? कटार देते हुए डर लग रहा है या गूजरी के छावनी आने में डर लग रहा है ?

शहजादा : औरत । तेरी जबान कैसे चल रही है ?

मैना : अकेली जबान ही नहीं, हाथ भी चलते हैं । दो कटार दो ।

(मैना आवेश में शहजादे की ओर बढ़ती है । शहजादा पीछे हट जाता है ; मैना गिर जाती है । शहजादा उसे घोड़े पर बिठाकर छावनी की ओर ले जाता है ।)

दृश्य 3

(गांव की सुनसान चांदनी रात में नवयुवक खेल रहे हैं । गेंद-डंडे का खेल पूरा करके युवक मण्डल नृत्य के लिए एकत्रित होते हैं । सब हीरा की राह देख रहे हैं । हीरा आता है ।)

युवक : हीरा, इतनी देर कैसे हो गयी ?

हीरा : भाभी की राह देख रहा था । मैंने सोचा देखूं, भाभी क्या खबर लाती हैं ? लेकिन अभी तक भाभी, उनकी सखियां कोई भी नहीं दिख रहीं । इसलिए गांव के लोगों को चिन्ता हो रही है । बड़े भैय्या बेचैन हो रहे हैं ।

युवक : वो तो भैय्या उनकी आदत है । तुम रास शुरू करो ।

हीरा : चलो भई । शुरू करो।

(सब मंडलाकार में गाते-गाते नृत्य करते हैं)

उठे अभयसिंह उठे वीरसिंह
उठे हैं बावन वीर
नवलख गूजर उठे मोरी माता
उठे हैं नवलख वीर
ऐसा कलंक मत दे मेरी माता
ऐसा न दे तू कलंक
शीश धरूं तव थाल मेरी माता
शीश धरूं तव थाल
बैर भूमि क्या ले मेरी माता

गैर भूमि क्या ले
जन्मा बेटा द्वार मेरी माता
बेटा जन्मा द्वार
कुल जो लगे कलंक मेरी माता
कुल जो लगे कलंक
तो खून से पैर पखारूं मेरी माता
खून से पैर पखारूं
घोड़ा चमके तेवर चमके
चमके अकास बिजरिया
चमके अकास बिजरिया मेरी माता
चमके अकास बिजरिया
मेघ सा बरसे लहू मेरी माता
मेघ सा बरसे लहू
पहना रण का भेस मेरी माता
पहना रण का भेस
जीने मरन की ज्वार मेरी माता
मरन जीन की ज्वार
अब न देना कलंक मेरी माता
अब न देना कलंक ।

(अंतिम पंक्ति बोलते समय वहां एक ब्राह्मण दौड़ कर आता है । उसकी सांस तेज चल रही है ।)

ब्राह्मण : अरे सुनो । चंदाजी का घर कहां है ? हीराजी—कहां है ?

(कोई सुनता नहीं)

अरे लड़ने की बातें करते हो और जो लड़ने आया है उसकी बात सुनते नहीं । हीरा जी कहां है ?

(ब्राह्मण के शोर से उनका ध्यान आकर्षित होता है तथा कुछ इधर-उधर बट जाते हैं । रास में विघ्न पड़ता है । सब ब्राह्मण के पास एकत्रित हो जाते हैं)

हीरा : ये रहा । क्या काम है ?

ब्राह्मण : अरे, तुमसे क्या काम है ? तुम्हारी भाभी कैद हो गयी है ।

हीरा : हें, हें। मेरी भाभी कैद हो गयी है ? किसने कैद किया ?

ब्राह्मण : बादशाह ने। तेरी भाभी ने मुझसे संदेशा भिजवाया है।

युवक-२ : क्या, क्या ? सब गूजरियां कैद हो गयी हैं ?

ब्राह्मण : बादशाह की छावनी में गयी औरतें कभी वापिस आयी हैं ? तुम लोगों से औरतें घर में नहीं रखी जातीं ? तुम्हें नहीं मालूम, ये म्लेच्छों का युग है।

हीरा : जबान बंद करो। अरे, भाइयो। घुड़साल में जाकर घोड़े कसो और हथियार बांधो। जाकर दिल्ली के बादशाह से जीवित गूजरियां लायेंगे। इसमें क्या मुश्किल है ? क्यों महाराजा ! हरामखोरों का राज है इसलिए गूजरियां क्या परदे में रहेंगी ?

ब्राह्मण : क्यों बढ़कर बोलता है ? तेरी भाभी तो परदे में बैठी है।

हीरा : अरे गरूडा। (**हीरा उसकी ओर लपकता है दूसरे उसे रोकते हैं**)।

(**गांव में खबर फैल जाती है। नौ लाख गूजर आक्रमण करते हैं। उसका वर्णन हम इन प्राचीन पंक्तियों में सुनेंगे।**)

'कि वहां से हीरा दौड़ गया उन घोड़ों के पास रे
कि खूब कसा है बाना उस पर ढीली करी लगाम रे
कि शूर होय तो संग चलो, नहीं कायर का काम रे
कि केसरिया भई बांधो पगड़ी, हो जाओ लाल गुलाल रे
कि दिल्ली जाकर घेरूं तो रहवे मेरा नाम रे
कि हीरा घोड़ा एक चढ़ा और गूजर चढ़े नव लाख रे।'

दृश्य 4

(**समय : दिल्ली जाते हुए बादशाह का पीछा करती गूजर सेना। तिथी फागुन सुदी चौदश। मैना गूजरी ने काली का व्रत रखा है अर्थात अन्नत्याग और काली की उपासना से उसमें सहज ही चमत्कारिक उग्रता और तेज आ जाता है। उसे झरोखे में से गूजर तथा तुर्क सिपाही बढ़ते हुए दिखते हैं। हीरा पीछे हटता है। गूजरी गुस्सा हो जाती है।**)

मैना : अरे कोई है ? कोई है क्या ? अरे मुझे नीचे जाने दो। अरी रूपा।

अरी शोभा। यहां आओ। हीरा पीछे हट गया। अरे कोई आओ। हे योगमाया। गूजर हट गये। मुझे लड़ने दो। हे योगमाया।

(रूपा आती है)

मैना : हीरा पीछे हट गया है। गूजरों को जीवन बहुत प्यारा है।

रूपा : मैना ! पागल क्यों होती है ? गूजरों से जितना हुआ उतना किया। गूजर नौ लाख और मुगल बारह लाख।

मैना : अच्छा ? गूजरों से जितना हुआ उतना किया। अब गूजरी से जितना होगा, उतना करेगी **(फिर झरोखे से देखती है)** नहीं, नहीं, हीरा वापिस आ रहा है मेरे पति को दूर कर रहा है। हीरा पीछे हटा। रूपा, हीरा को मेरा संदेशा पहुंचा। उसे मेरी चूड़ी और चोली भेज दे। और मेरे हाथ में तलवार ला।

(मैना आवेश में नाचती और गाती है)

'बादशाह के साथ मैं ऐसी लड़ूं कि मेरा जीवन में हो जाये नाम रे।'

(रूपा देखती है कि मैना के सिर पर शक्ति सवार है। मैना में देवी आती है)

रूपा : अम्बा मां। अम्बा मां। गूजर जीतेंगे। अम्बा मां।

(शहजादे के पीछे-पीछे हीरा दौड़ता हुआ आता है)

शहजादा : मैना। मेरी बहन। मैना, मेरी बहन। मुझे बचाओ।

रूपा : अम्बा मां, अम्बा मां।

हीरा : **(चरण छूता है)** अम्बा मां, अम्बा मां।

मैना : **(शांत होती है)** देवर खड़ा है। **(शहजादे को देखकर फिर आंख फाड़ती है)** हीरा।

शाहजादा : **(देखता है कि यह हिंदुओं का ढोंग नहीं है)** अम्बा, मेरी बहन। हीरा जी, अपनी भाभी को सम्मानपूर्वक ले जाओ। जब से यहां आयी है तबसे खाना नहीं खाया।

(हीरा भाभी का हाथ पकड़कर ले जाता है। शहजादा देखता रहता है।) ये हिंदू गजब करते हैं। इतने दिन बिना खाए-पिए कैसे रह सकते हैं ?

दृश्य 5

(गूजरों के गांव में विजयतोरण बंधे हुए हैं। गांव के बाहर स्वागत के लिए गांव की स्त्रियां खड़ी हैं। गूजर सेना पीछे है। मैंना गुजरी का कालो मां का उपवास जारी है। भाभी को जल्दी खाना खिलाकर हीरा अन्य गूजरियों को लेकर आगे बढ़ता है। मैना और सखियां उन औरतों को देखती हैं, जो छावनी देखने नहीं गयी थीं। उनके मुख पर तेज नहीं है। मैना सोचती हुई खड़ी रहती है।)

हीरा : चलो भाभी। अब घर आ गया। तुम्हारा व्रत पूरा हुआ।

(मैना खड़ी हुई स्थिर दृष्टि से स्त्रियों की तरफ देखती रहती है। अन्य स्त्रियां प्रत्येक बात में मैना का अनुसरण करती हैं)

भाभी, चलो ना ?

मैना : देवर जी ! पैर नहीं उठते। **(रूपा की ओर देखकर)** रूपा, वो ताना याद है : बादशाह की बेगम बनने गयी थी। देवर जी ताने की रोटी खानी पड़ेगी। **(मैना के शरीर और मस्तिष्क की स्थिति ऐसी है कि वह शीघ्र ही गुस्सा हो जाती है) (आवेश में)** देवर जी। मुझे ताने की रोटी नहीं खानी।

हीरा : अरे, भाभी। ये क्या कहती हो ? तुम्हें कौन ताना देगा—तुम तो साक्षात् योगमाया की अवतार हो।

मैना : **आवेश पर नियंत्रण पाती हुई)** मेरा सत योगमाया जानती हैं।

हीरा : भाभी। देखो, वो मेरी मां खड़ी है। और वो तुम्हारी छोटी ननद है। चलो, इनसे मिलो। गूजर सेना के आने से पहले मुझे वापस जाना होगा।

(मैना के पांव उठते नहीं, किन्तु हीरा हाथ खींचकर ले जाता है। गांव की सब स्त्रियों के पास आता है। हीरा की मां और बहन आगे आती हैं। उन्हें आगे आते देखकर मैना आनंद से घूंघट निकाल लेती है। हीरा मां के पांव छूता है)

माता : बेटा जुग-जुग जीयो।

बहन : **(बलाएं लेते हुए)** भैया, भाभी जल्दी लाइओ।

हीरा : **(देखता है कि बहन भाभी की तरफ नहीं देख रही)** बहन ! मेरी

वह तो जब आयेगी तब आयेगी, पर इस भाभी की तरफ तो देख ।

(बहन मुंह बना लेती है ।)

(मैना सास के पैर छूने जाती है)

सास : **(पैर खींचकर)** मुझे मत छू, बादशाह की बीबी ।

मैना : **(तनकर घूंघट उतार देती है)** बादशाह की बीबी ।

(मैना गांव की स्त्रियों की ओर देखती है । उसे लगता है मानो हर स्त्री उसे बादशाह की बीबी कह रही है)

(पुनः चकित दृष्टि से) बादशाह की बीबी । मैं बादशाह की बीबी ? बादशाह की बीबी को लेने के लिए अपने लड़के को क्यों मरने भेजा था ?

सास : मरने न जाये तो गूजरों की नाक न कट जाये । पर तुर्कों के घर में रही हुई को मैं अपने घर में रखूंगी ? मेरा कुल बदनाम हो जायेगा ।

मैना : मुझ से तुम्हारा कुल बदनाम हो जायेगा? **(मैना की आंखें फट जाती हैं)** ओ योगमाया, तू मेरा सत जानती है । हीरा, मैं जाती हूं । अपने भय्या से कहना कि मैना तुम्हारे कुल को बदनाम नहीं करेगी । **(पुनः फटी नजरों से सास की ओर)** मां जी ! मुझसे तुम्हारे कुल की लाज जायेगी ? हे योगमाया !

(मैना में नवीन तेज दिखायी देता है)

हीरा : मां, मां, गजब कर दिया । देवी क्रोधित हो गई । मां, मैंने दिल्ली में देखा था—**(मैना से)** मा, क्षमा करो, मां क्षमा करो ।

सब स्त्रियां : **(सास और ननद के अतिरिक्त)** क्षमा करो मां, क्षमा करो । बच्चों का दोष क्षमा करो ।

(मैना शांत हो जाती है । जूड़ा खुल जाता है । मैना दिव्यता का प्रदर्शन करती हुई विदा लेती है)

सब : **(अब सास और ननद भी)** मां रहो, रहो ।

(मैना के पीछे अन्य औरतें हाथ में कटारी लिए जोगिनों की तरह जाती हैं ।)

सब : रहो ! रहो !

(किंतु जोगिनों का दिव्य नृत्य देखकर सब चुप हो जाते हैं)

(नेपथ्य से)

'वहां से चलके गूजरी पहुंची पावागढ़ रे,
पावागढ़ में लुप्त हो महाकाली कहलाए रे ।'

ओस के मोती

—यशवंत पंड्या

पात्र

शंकर

पार्वती

मोहिनी

पुरुष

[संध्या हो रही है। शरद का आरंभ है। वृक्षमाला के पत्ते-पत्ते में नव-यौवन का संचार हो रहा है। पहाड़ी की चोटी पर शंकर विराजमान हैं। गोद में पार्वती बैठी हैं।]

शंकर : अब तो हद हो गयी है, उमा।

पार्वती : क्या कहा नाथ ?

शं. : **(नम्र होकर)** : और क्या होगा ? कभी-कभी तुम बिना विचारे बोल देती हो। **(स्वाभिमान दर्शाते हुए)** सत्ता का सच्चा मूल्य उसके सदु-पयोग में है। बाकी लाभ तो गंवार भी प्राप्त कर लेता है।

पा. : **(न समझते हुए)** : कभी नहीं। आज इतने वर्षों के बाद आप मुझे ज्ञान दे रहे हैं ?

शं. : क्योंकि तुम्हारा अहंकार आज तक वैसा का वैसा है।

पा. : **(मधुर स्वर में)** और आपका ?

शं. : परिहास रहने दो। **(आकाश की ओर देखते हुए)** बारह महीनों में से बादलों की गड़गड़ाहट कुल एक-दो-तीन महीने ही होती है। जीवन के गांभीर्य में हास्य भी इतना ही शोभा देता है। अगर इसकी अतिवृष्टि हो जाये तो परिणाम अनावृष्टि से भी घातक होता है।

(पार्वती अपने कौतूहल से परेशान होती है, इसलिए—)

पा. : **(कटाक्ष से)** आप तो पति से गुरु बन गये, पर मैं पत्नी से शिष्या नहीं बन सकती।

शं. : **(शांति से)**, इससे अधिक मैं तुमसे अपेक्षा भी नहीं करता। देखो, मेरी अर्धांगिनी ही रहना...

पा. : **(क्रोधित होकर)** और मैं किस प्रकार रहती आयी हूं। ऐसी बात किसी और ने कही होती तो मैं श्राप देती कि...

शं. : **(कंधे पकड़कर)** देखो ! अब मैं जो कुछ कहूं वह तुम धैर्य से सुनो। वरना कहना न कहना बराबर हो जायगा।

शं. : **(चतुराई से)** बस ?

(पार्वती शांत हो जाती है)

तुम्हारे सतीत्व के प्रति मेरी आरंभ से श्रद्धा है। इस रूप में तुमको देखकर

मुझे तुम पर गर्व होता है। किंतु इसका दुरुपयोग...

पा. : दुरुपयोग ! तुम दुरुपयोग किसे कहते हो ?

शं. : जिसके प्रयोग का कोई लाभ नहीं, मात्र दूसरों का पतन होता हो। यह सब दुरुपयोग से भी अधिक है।

पा. : ठीक है। पर उससे हमें क्या ?

शं : सुनो। चित्रकेतु को जो तुमने श्राप दिया था, वह इसी प्रकार का दुरुपयोग था।

पा. : **(गरदन हिलाते हुए)** नहीं। भरी सभा में मेरा अपमान हो जाये, वह घटना मेरे लिए असह्य थी। और भविष्य में भी स्वर्ग की किसी पुण्यात्मा के साथ वह ऐसा अन्याय न कर सके, इसलिए मैंने उसे वप्रासुर बनाया। इसमें मैंने क्या बुरा किया ?

शं. : **(हंसकर)** : प्रिय पार्वती, अपने अज्ञान के कारण किसी दूसरे को अन्यायी मानना कितना सरल है ?

पा. : **(बेचैनी से)** अर्थात् ?

शं. : **(सांत्वना-सी देते हुए)** : चित्रकेतु सामान्य नहीं है। वह और मैं भगवान के लिए बराबर हैं। वह चाहता तो उल्टा श्राप दे सकता था। उसने ऐसा नहीं किया, यही उसकी उदारता है।

(अपनी कमजोरी का ज्ञान होते ही पार्वती लज्जित महसूस करती है)

और उमा, कोई सत्य कहे तो बुरा मानना हमारा अधिकार नहीं है। भरी सभा में तुमने मेरी गोद में बैठने का हठ किया अगर किसी चित्रकेतु ने उसका विरोध किया तो उसमें असाधारण क्या है ? **(दृढ़ स्वर में)** मुझे भी यह खटकता है। एकांत के अतिरिक्त अन्य स्थानों पर पापी प्राणी भी एक दूसरे से अलग रहने का प्रयत्न करते हैं। तुम तो सात पहर और सत्तावन घड़ी मेरे साथ रहने पर भी...

पा. : **(रुंधे स्वर में)** मैं बोझ लगती हूं ?

(मुंह फेरकर पार्वती आंखों से छलकते जल को पोंछ लेती हैं। शंकर हथेली से पार्वती का चेहरा अपनी आंखों के सामने लाते हैं। फिर—)

शं. : **(चतुराई से)** बस ?

(अनमनी पार्वती मुस्कराती है)

(अवसर का लाभ उठाते हुए) गिरिजा, जिसके लिए पृथ्वी का भार भी कुछ

नहीं है, उसको तुम भार लगोगी ?

(ग्रांखों में ग्रांखें डालते हैं)

(प्रसन्नतापूर्वक) प्रियदर्शनी, एक बार हिम्मत करके कह दो कि तुम्हें इस शरीर से इतना मोह क्यों है ?

पा. : **(गर्व से)** यह जानना हो तो ग्रापको साक्षात पार्वती का ग्रवतार लेना पड़ेगा ।

शं. : **(प्रार्थना सी करते हुए)** ग्रौर सब छोड़ो बस इतना बता दो कि दो पल मुझसे ग्रलग होकर तुम्हारा घूमने को मन नहीं करता ?

पा. : **(मन में)** कैसा ग्रजीब प्रश्न पूछते हैं ?

शं. : **(ग्राग्रह से)** : कहो, क्या मन नहीं करता ?

पा. : **(मन में)** इतना ही कह दूं तो बाकी क्या रहा ? **(इठलाती हुई, प्रकट में)** दूर से तुम मुझे ऐसे लगते हो कि जी चाहता है या तो तुम से दूर ही दूर रहूं या पास । इसके ग्रलावा कोई चारा नहीं ।

शं. : ऐसा क्यों ? **(ग्रांखें नचाकर)** क्या मैं इस बहकावे में ग्राने वाला हूं ? मैं तो सोचता था कि पार्वती जैसी सती जिस पर मोहित हुई होगी, उस पुरुष का सौंदर्य…

पा. : **(स्वीकारते हुए)** : पीछे पछताना पड़ा होगा तो ? **(पार्वती ग्रधिक देर तक हंस नहीं पाती)**

शं. : **(ग्रांखें झुकाकर)** हां, ग्रानंद के ग्रांसू जैसे तुम्हारे ये होंठ ग्रभी प्रायश्चित का ही ग्रानंद ग्रनुभव कर रहें है ।

पार्वती ग्रपने उल्लास को दबाती है । ऐसा करते हुए उसमें ग्रपने ग्राप गंभीरता ग्रा जाती है)

पा. : प्राण प्रभु, ग्रगर सब ग्रपना रूप देख सकते तो ब्रह्मांड का ग्राधा ग्रभिमान समाप्त हो जाता ।

शं. : **(ग्रात्मविभोर होकर)** सच बात यह है, तुम्हारे ग्रौर सबके हृदयों को कुरेदने वाला सत्य है । **(वक्र सरलता से)** लेकिन ग्रब बेकार है ।

पा. : **(बात को जारी रखते हुए)** ग्रब ही उसकी सच्ची ग्रावश्यकता है ।

शं. : कैसे ?

पा. : मेरे रुद्रनाथ में कितना ग्रहंकार है, यह इससे साबित हो गया है ।

शं. : **(जैसे-तैसे)** अहंकार भी किसी अंश में आवश्यक है। शिव में अपने पर अहंकार न हो तो जीवन में कुछ है ही नहीं।

(दोनों चुप हो जाते हैं)

(मन में) पार्वती शंकर को न जाने यह बहुत दुख की बात है। जड़ हिमाचल की बेटी में चेतना के अंकुर हो ही कैसे सकते हैं ? **(पार्वती को आह्लादित करने के लिए-प्रकट)** मुझसे लिपटे रहने का तुम्हारा कारण कितना अदभुत लगता है। पर, अम्बा, तुम्हारी इस आदत के कारण लोग मुझे शव कहने लगे हैं।

पा. : **(उल्लसित होती हुई)** सच ? तुम्हारे स्थान पर अगर मैं होती तो इसे लोगों का अभिनंदन समझती और गर्व से फूली न समाती।

शं. : **(विनय के साथ विरोध करते हुए)** नहीं, अपना संसार इतना उदार नहीं है उसके एक-एक अक्षर का अर्थ गंभीर होता है, विपरीत होता है।

(पार्वती के मुख पर चिंता की हल्की रेखा छा जाती है)

संक्षेप में, उनके लिए मैं पत्नी का दीवाना हूं। सुंदर शब्दों में यह साफ गाली है। देवी, समझ रही हो ?

(हल्की रेखाएं गहरी होती जा रही हैं)

(मन में) इसे बुरा लग गया। **(प्रकट)** गौरी, मैं एक जोगी की भांति क्यों भटकता हूं, यह मैंने तुम्हें कभी नहीं बताया ?

पा. : **(कठिनता से)** नहीं।

शं. : तो अब बताता हूं। तुम्हारे सिवाय दूसरे सब लोग मुझसे डरते हैं। यही मेरा मुख्य उद्देश्य है। सच, तुमने जैसा कहा वैसा ही हूं।

पा : **(नीचा मुख करके)** नहीं। वह तो मेरी भूल थी। भूल जाइए।

शं. :**(आलिंगन में लेकर)** गिरिबाला, शरमाओ मत। यह व्याघ्रचर्म तुम्हें नहीं डरा सकती।

पा. : मुझे तो इसकी आदत पड़ गई है।

शं. : और मृदु कुसुम के स्थान पर यह रुद्राक्ष की माला···

पा. : **(बीच में ही)** फूलों की माला तो कितनी बार आपने नांदी को भी पहनाई है।

शं. : **(मृदु बोलते हुए)** परन्तु हर घड़ी तुम्हें कांटे नहीं चुभते ?

पा. : तो तुम्हें मेरी नथनी बाधा डालती है ?

शं. : यह सर्प कुंडली···

पा. : समस्त सृष्टि में यह सत्ता मात्र मेरे प्रभु की है ।

(शंकर नया तर्क सोचते हैं)

(ठठोली से) ले···किन··· हां । कभी-कभी मेरी कोई बात परेशान कर

शं. : **(एकदम)** कब ?

पा. : जब आपका बैल उछल-उछल कर छोटी सी जीभ से मेरा गाल गीला कर देता है ।

शं. : यह मुझसे कैसे सहन होगा ?

(दोनों विपरीत दिशा में मुंह फेर लेते हैं)

(थोड़ी देर बाद) इस अस्तव्यस्त जटा से तुम्हें चिढ़ नहीं होती ?

पा. : **(बेधड़क)** नहीं ।

शं. : **(झंझोड़ते हुए)** तुम स्त्री हो या···

पा. : पत्नी ।

शं. : **(मन में)** कितनी सीधी व्याख्या है ।

पा. : **(मन में)** स्त्री होते हुए भी मैं क्यों नहीं भूल पाती ? ये जटाएं कैसी डायन लगती हैं । इतना पूछने पर अगर एक बार कह दिया होता तो ?

शं. : सती, मेरे विरुद्ध कुछ कहना नहीं है ?

पा. : **(मन में)** कह दूं? आज की बहस का मुख्य कारण तो मंदाकिनी ही है ना ? अगर मेरी आंख के सामने वह न होती तो मैं हमेशा अपने भोलेनाथ की गोद में बैठी रहती ? **(प्रकट)** कहने लायक कुछ नहीं है ।

शं. : **(आतुरता से)** न कहने लायक तो कुछ है ना ?

(इस अचानक प्रश्न से पार्वती आश्चर्यचकित हो जाती है ।)

पा. : रहने दो । कुछ न जानने में ही आनन्द है ।

शं. : **(गुस्से में)** यह कैसा चमत्कार है कि जो शिष्या नहीं है, उसने अपने आप ही गुरु का पद धारण कर लिया ।

(पार्वती शंकर के सामने देखती है और शंकर अपने हृदय में देखते हैं ।)

पा. : **(परिणाम की चिंता किए बिना)** तुम्हें क्रोध आएगा इसीलिए मैं नहीं कह रही थी । पर अगर न कहूं तो तुम क्रुद्ध हो जाते हो । इसीलिए मैं

एक शब्द भी छुपाना नहीं चाहती ।

(शंकर ऊपर देखते हैं)

देखो, मैं क्यों तुम्हारा साथ नहीं छोड़ सकती, इसका एक ही कारण है और वह स्पष्ट है । मेरी आंखों के सामने तुम भागीरथी को अपने पास रखो, यह मेरे लिए एक बहुत बड़ी चुनौती है । केवल पार्वती ही नहीं, बल्कि कोई भी सहन न कर सकेगा, यह ऐसी विषम अवस्था है । मैं तुम्हें कैसे छोड़ सकती हूं ?

शं. : **(मन में)** समझा । **(प्रगट)** हिमवती, गंगा के गर्व को चूर करने के लिए ही मैंने उसे जटा में जकड़ा हुआ है । यह किससे छुपा है ?

पा. : ये मत कहो । दूसरों के अभिमान को चूर करने के लिए कितनों ने अपने आप को खोया है ।

शं. : होगा । पर मैं यह कैसे भूल सकता हूं कि किसी पार्वती नामक स्त्री से मैंने कभी विवाह किया था ?

पा. : भूलने की क्या आवश्यकता है ? तुम देव-पुरुषों को तो जब-तब जहां-तहां अपने मन के अनुसार व्यवहार करने का अधिकार है परंतु उनकी पत्नी का कोई दूसरा पुरुष न हो । उसके अपने...

शं. : **(आवेश से)** बहुत हो गया । ईर्ष्या की भी एक सीमा होती है ।

पा. : **(विनम्रता से)** मैं न कहती थी कि क्रोध आएगा । आ गया ना ?

शं. : **(स्वाभिमान से)** उमा ! महाअग्नि को प्रज्ज्वलित करने के लिए छोटी सी चिंगारी बहुत होती है । केवल पार्वती, जिसका यह जीवन था और है, उसके विषय में स्वयं पार्वती अपने मुख से आरोप लगाए और फिर ज्वाला उठे तो उसमें दोष किसका है ? यह चांद की चांदनी पार्वती का गुण है और सूर्य की अग्नि शिव का व्यक्तित्व ।

(मानो बिजली गिरी हो, इस प्रकार पार्वती का शरीर थर-थर कांपता है)

जाह्नवी को किसी कारण से सिर में सजाया है । हृदय से तो क्या नयनों से भी शुद्ध मिलन के प्रसंग को मैंने असंभावित कर दिया है । **(मस्तक की ओर उंगली से संकेत करते हुए)** ये ललाट की चंद्रलेखा भी इतनी ही निर्मल है । दक्ष यज्ञ में सोमदेव ने मुझ पर अन्याय किया था, उसका यह प्रायश्चित है । उमा । पार्वती । महेश किसी पर अन्याय नहीं करेगा और किसी का अन्याय नहीं सहेगा ।

पा. : **(स्नेह से)** पर क्षमा तो कर दोगे ना ?

शं. : बहुत खुशी से । त्रिपुरारी उसमें भी अपना स्वाभिमान समझते हैं ।

(पार्वती को कुछ संतोष होता है, उसके हावभाव से स्पष्ट है कि जैसे उसे कुछ याद आया हो)

पा. : शंकर के स्वाभिमान का मतलब है पार्वती का सर्वस्व । पिता दक्षराज के यज्ञ में पुत्री सती अपनी देह भस्मीभूत कर दे, इसका और क्या कारण होगा ? पिता भी पति का अपमान करे तो...

शं. : धैर्य रखो । देखो...

पा. : नहीं । मेरी सुन लो...तभी तो मैंने देह त्यागी । परन्तु आत्मा अमर थी । उसने उमा का अवतार लिया । तब भी सेवा रुद्र की ही की ।

शं. : **(प्रसन्न होकर)** ऐसी सती गंगा से ईर्ष्या करे, यह क्या हास्यास्पद बात नहीं है ?

पा. : **(आंखें फाड़कर)** फिर वही बात ? **(झटक कर)** मरने दो ।

शं. : ऐसे नहीं मरेगी । प्रणय की कलह अनादि अनंत है ।

(पार्वती मौन रहती हैं, क्योंकि अगर वह उत्तर नहीं देगी तो विषय बदल जाएगा ।)

लेकिन पार्वती, एक बात हम दोनों ही भूल गए ।

पा. : क्या ?

शं. : अगर पहले याद आ जाती तो यह झड़प होती ही नहीं ।

पा. : **(अधीर होकर)** लेकिन कौन सी ?

शं. : **(धैर्य से)** मदन दमन की ।

(पार्वती का उत्साह शांत हो जाता है)

(पद के गर्व से) वह मुझे बींधने आया, मैंने उसे ही बींधकर अनेकों को उभारा । क्यों ऐसे ही है ना ?

पा. : **(अब पार्वती के मन में शिव को छेड़ने का विचार आता है—)** मुझे उलटा लगता है ।

शं. : मतलब ?

पा. : मदन जब जीवित था तब रति से मिले हुए अवकाश के क्षणों में ही

अपना जादू अजमाता था। वह भी एक ही स्थान और एक ही व्यक्ति पर।

(पार्वती बोलना बंद कर देती है)

शं. : और अब ? **(चिढ़ते हुए)** क्या प्रेत बनकर...

पा. : **(शांति से)** नहीं **(हंसते हुए)** पर मुझे डर है कि उसकी राख के रज-कण आज भी कैलाश के चारों ओर फैले हुए हैं।

शं. : **(हृदय पर हाथ रखते हुए)** लेकिन क्या यह प्रलय के अधिष्ठाता पिनाकपाणि के पास रहते हुए आगे का विचार कर सकेगी ? **(गर्व से)** अरे। तुममें तो महानारायण का भी साहस नहीं है। —सती, क्या समझीं ? महानारायण का भी साहस नहीं है।

पा. : **(गोदी में से उठकर)** हैं, अच्छा।

(पार्वती चलने लगती है)

शं. : पर ऐसे एकाएक......

पा. : आज तक दिल में जो कपट था, पहले उसका प्रायश्चित करने दो। मानसरोवर का पवित्र जल आज अधिक पवित्र लगेगा।

(पार्वती चली जाती हैं)

शं. : **(हर्ष से)** आज से हमारा झगड़ा समाप्त। जीवन-कुसुम में सौंदर्य और सुरभि ऐसे घुल-मिल जाएंगे, जिसके लिए नई उपमा गढ़नी पड़ेगी।

(एक फूल का पौधा देखते हुए शंकर वहां जाते हैं। फूल तोड़ भी नहीं पाते कि एक कोमलांगी को देखकर स्तंभित रह जाते हैं)

मोहिनी : **(तेवर चढ़ाकर)** अरे तुम कौन हो ? मदारी की भांति निर्लज्ज वेश में घूम रहे हो, वह तो ठीक है, लेकिन कहां घूमना चाहिए कहां नहीं, इतना तो पता होना चाहिए।

(शंकर पूरी तरह आश्चर्य मुक्त नहीं हुए, इसीलिए गुस्सा नहीं हो पाते)

(फूल चुनती हुई) तुम यहां से चले जाओ तो अच्छा है।

शं. : **(मन में)** कौन होगी ? ऐसा रूप, ऐसा तेज, ऐसे अंग, मैंने आज ही देखे हैं। ब्रह्मा भी नित नयी सृष्टि करते रहते हैं।

मो. : **(घबराहट दिखाते हुए)** तुम महेश तो नहीं हो ?

शं. : **(लापरवाही से)** पूछने की क्या जरूरत आ पड़ी ?

मो. : ऐसे ही। मार्ग में पूज्य पार्वती जी मिली थीं। इसीलिए जरा शंका हुई थी।

शं. : (मन में) उमा सच कह रही थीं। महेश अचल नहीं हैं।

(शंकर सर्प की कुंडली को दूर करते हैं)

मो. : (मन में) पार्वती-पार्वती। अगर तुम मेरी गोद में होती तो हृदय में ऐसी तुच्छ आकांक्षा जागृत न होती। मानसरोवर में तुम पुण्य कमाने गई हो और मैं यहां पाप की पोटली बांध रही हूं।

(हवा चलती है। मोहिनी का महीन वस्त्र इधर-उधर उड़ता है।)

(मन में और एसा यौवन...

(शंकर मोहिनी की ओर बढ़ते हैं। नखरे दिखाती हुई मोहिनी पीछे खिसकती है)

मो. : (बनावटी क्रोध से) तुम्हारी इच्छा क्या है ?

(शंकर विह्वल हो उठते हैं)

शं. : (मन में) इच्छा नहीं तो—धिक्कार ही सही।

मो. : (कटाक्ष करती है) आप तो महान पुरुष कहलाते हैं ना ?

(हृदय बींधती हुई) मेरे जैसे तुच्छ प्राणी की क्या हस्ती कि आपकी कृपा दृष्टि प्राप्त करे।

(घायल शंकर अनुत्तर रह जाते हैं)

(नथुने फुलाते हुए) अगर तुम्हारा मौन व्रत है तो अच्छा है जाकर घने वृक्ष की शीतल छाया ढूढ़ लो।

शं. : (अचानक आगे बढ़ते हुए) और न हो तो ?

(घबराई हिरनी की भांति मोहिनी इधर-उधर देखती है किंतु पीछे नहीं हट पाती)

(उड़ते वस्त्र पकड़कर) मौन व्रत न हो तो ?

मो. : (वस्त्र छुड़ाती हुई) तो मन बहलाने के लिए गीत गाया करो। मुझे इससे क्या ?

(अंगों को इस प्रकार मरोड़ती है कि शंकर के चित्त में उन्माद बढ जाता है)

(जादू करते हुए) मुझको देखकर ऐसे पागल क्यों हो रहे हो ? उमादेवी भी तो कभी जवान थीं ? तब भी वह नीलकंठ की ही थीं न ?

(और ऐसी सरल हंसी हंसती है जैसे कि मोती के दाने बिखर गए हों। शंकर में कामाग्नि भड़क उठती है)

(तेज जबान से) जब आपकी उमा पूर्ण यौवना थी तब...

(शंकर एकदम मोहिनी को अपनी बाहों में भर लेते हैं)

शं. : **(आलिंगनबद्ध करते हुए)** ऐसा ही आनंद देती थी। **(चपल चातुर्य से मोहिनी छूट जाती है और भाग जाती है। शंकर पीछे दौड़ते हैं। इतने में असली स्थान पर पार्वती आ जाती हैं)**

पा. : **(शंकर को न देखकर)** अरे कहां हो ? कहीं तप की धुन तो सवार नहीं हो गई ?

(किसी की चीख सुनाई देती है। पार्वती उस तरफ देखें, इससे पहले ही मोहिनी वहां आ पहुंचती है। पार्वती का हाथ पकड़कर पैरों में गिर जाती है)

मो. : **(हांफती हुई)** बचाओ।

पा. : **(खड़ा करती है)** किससे ? तुम कौन हो ?

(पार्वती के आश्चर्य के दौरान मोहिनी स्वस्थ हो जाती है। जिस प्रकार वृक्ष से बेल लिपट जाती है, उसी प्रकार पार्वती से मोहिनी लिपट जाती है)

मो. : **मैं** ? **मैं** ?

(पार्वती चौंक जाती हैं। देखती हैं मोहिनी के स्थान पर कोई पुरुष है। परन्तु उसे पहचानते ही शान्त हो जाती है। मोहिनी को ढूंढते हुए शंकर आते हैं)

शं. : **(दूर से)** यह तो पार्वती है। लेकिन वह कौन है ?

(शंकर दौड़ते हुए उस ओर जाते हैं)

पा. : **(आंखों से)** आइए, क्या ढूंढ़ रहे हैं ?

पुरुष : **(अट्टहास से)** पधारो। मोहिनी आ रही है।

शंकर : **(बहुत संकोच से)** कौन ? नारायण ? नारायण।

हंसा

—बटुभाई उमरवाडिया

पात्र

हंसा

सुरमा

विमला

उर्सुला

नरेश

जगदीश

नौकर

श्रीमंत

दृश्य 1

(समय : सवेरे के ग्यारह । स्थान : नरेश के घर का एक कमरा । हंसा फूलदान ठीक कर रही है इतने में धीमंत का प्रवेश ।)

हंसा : आइये आप कैसे हैं ?

धीमंत : क्यों नरेश बाहर गया है क्या ?

हंसा : हां, पर बैठिये तो, दफ्तर गये थे, अब आते ही होंगे । आठ बजे के गये हुए हैं ।

(दोनों बैठते हैं । थोड़ी देर बाद)

धीमंत : तुम लोग वसंत-उत्सव में गये थे क्या ? मैं तो नहीं गया ।

हंसा : (जरा सोचकर) नहीं, मैं भी नहीं गयी ।

धीमंत : अरे किस सोच में पड़ गयी ?

हंसा : नहीं, यूं ही । मैं नहीं गयी ।

धीमंत : नरेश भी नहीं गया ? वह तो गया ही होगा ।

(हंसा धीमंत की तरफ देखती है)

हंसा : हां, वे गये थे ।

(हंसा के मुख पर भाव सहज रूप से परिवर्तित होते हैं । धीमंत यह देखता है ।)

धीमंत : (व्यग्र होकर) तुम्हें बुरा लगा ? भई माफ़ करना । मैंने तो यूं ही पूछ लिया था । सब लोग यही बात करते हैं न, इसीलिए मैंने भी पूछ लिया । मुझे मालूम नहीं था कि तुम्हें···

(धीमंत वाक्य अधूरा ही छोड़ देता है, उसे लगता है कि हंसा सुन नहीं रही है । थोड़ी देर चुप रहता है । धीमंत की मेज पर बने निशानों पर दृष्टि जाती है ।)

हंसाजी, मैं जानता हूं ? फिर लड़ाई हुई होगी ।

हंसा : हुई होगी ।

(धीमंत हंसा की ओर देखता रहता है)

धीमंत : आपकी तबियत ठीक नहीं है ?

हंसा : (**स्वाभाविक रूप से हंसकर**) नहीं, बिलकुल ठीक है, क्यों ?

धीमंत : क्यों क्या ? उस दिन की लड़ाई के बाद तो छोटा बच्चा भी लड़ाई के नाम से भयभीत हो उठेगा। और तुम जानती हो कोई कहे कि आज दशमी है या होगी तो क्या तुम···

हंसा : यह इतनी-सी बात के बारे में मुझे क्या पता ? मुझे तो सब देशों के नाम भी नहीं आते, फिर···

धीमंत : वो तो मुझे भी नहीं आते, पर उससे क्या ?

हंसा : आपकी बात अलग है। आप तो सीख सकते हैं।

धीमंत : और तुम नहीं सीख सकती ? तुम तो दो सौ साल पहले की बात कर रही हो। देखो ना उर्सुला···

हंसा : हां, लेकिन वह तो कितनी पढ़ी-लिखी है ! जगदीश भाई ने उसे बी.ए. कराया है। मुझे तो मेरे मां-बाप ने कोई···

धीमंत : लेकिन वह बी.ए. होकर भी वैसी ही रही। मुझे तो लगता है कि उसको तुमसे आधा भी नहीं आता।

हंसा : यह तो आप कहते हैं।

धीमंत : और कोई नहीं कहता ?

हंसा : (**हंसकर**) नहीं।

धीमंत : एक नरेश को छोड़ कर सब कहते हैं। और वह तो मूर्ख है।

हंसा : ऐसा मत कहो, लेकिन मुझे ऐसी बातों से क्या सरोकार ? चलो, लड़ाई हुई, तो क्या हुआ !

(धीमंत हंसा की ओर देखता रहता है)

धीमंत : वह कितना भाग्यशाली है।

हंसा : आपको ईर्ष्या होती है ?

धीमंत : ना हो ? ऐसी स्त्री को···

(नौकर प्रवेश करता है)

नौकर : मेम साहब, जगदीशचंद्र साहब के घर से आदमी आया है। वह कहता है कि साहब आज वहीं खाना खायेंगे, आप इंतज़ार न करें।

(हंसा का मुंह उतर जाता है)

हंसा : वह आदमी चला गया ?

नौकर : नहीं, जी ।

हंसा : उसे यहीं भेज दो ।

(नौकर जाता है)

धीमंत : तुम्हें भी भूख लगी होगी ?

हंसा : हां, और आज तो···

(हंसा बोलती हुई अटक जाती है)

धीमंत : आज तो क्या ?

हंसा : आज विशेष कारण भी है ।

धीमंत : वो क्या ? कोई निजी बात है ?

हंसा : नहीं नहीं, आज मेरी वर्षगांठ है ।

(एक पुरुष प्रवेश करता है)

'अरे, तू आया है ?

आनेवाला : हां !

हंसा : तुझे क्या कहा था ?

आनेवाला : यही कि नरेश साहब खाना वहीं खायेंगे ।

हंसा : क्यों आज क्या है ?

आनेवाला : आज तो उर्सुला बीबीजी की वर्षगांठ है ना ।

(धीमंत और हंसा की दृष्टि मिलती है। हंसा तुरंत अपनी दृष्टि हटा लेती है ।)

हंसा : अच्छा तू जा ।

धीमंत : अरे, नरेश साहब वहां कब आये थे ?

आनेवाला : आठेक बजे होंगे, साहब ।

(जाता है)

(धीमंत होंठ काटता है । हंसा मुंह फेर लेती है)

धीमंत : अच्छा हंसा, मैं इजाजत लेता हूं । मुझे क्या मालूम था कि आज तुम्हारी वर्षगांठ है, वरना कोई तुच्छ भेंट ही ले आता । नरेश से कह देना कि मैं सवेरे आऊंगा ।

हंसा : आपने खाना खा लिया ?

धीमंत : नहीं, वहीं···

हंसा : तो यहीं क्यों नहीं खा लेते ?

(श्रीमंत एक क्षण विचार करता है)

श्रीमंत : ठीक है ।

(दोनों जाते हैं)

(परदा गिरता है)

दृश्य 2

(स्थान : जगदीशचंद्र के घर का दीवानखाना । जगदीशचंद्र विमला, उर्सुला तथा नरेश बैठे हैं ।)

विमला : (नरेश से) आज तो उर्सु के लिए दुगना आनंद होगा । क्यों ठीक है ना, उर्सु ?

(उर्सुला जरा नीचे देखती है)

नरेश : अच्छा ! क्यों ? कैसे ?

(नरेश उर्सुला को सीधे देखता है । वह चुप रहती है)

विमला : इसने कलकत्ता प्रदर्शनी में चित्र भेजा था । उसमें इसे इनाम मिला है ।

नरेश : अच्छा । बहुत खुशी की बात है । इनाम कितना था ?

उर्सुला : इनाम तो बड़ा नहीं था, पांच ही रुपये का है ।

नरेश : इसमें क्या ? इनाम तो आखिर इनाम ही है ना ? उसकी कीमत का तो प्रश्न ही नहीं होता । तुम्हारा इनाम कितनों में बंटा ?

उर्सुला : पंद्रह में ।

नरेश : लेकिन वो चित्र वापस नहीं आया ? मुझे तो इस विषय में तुमने कुछ भी नहीं बताया !

उर्सुला : बताने को ऐसा क्या था ?

नरेश : वाह, क्यों नहीं ? हम लोगों की स्त्रियों में तो यह अपूर्व घटना है ।

(विमला उठकर चली जाती है)

जगदीश : (नरेश से) क्यों, तुम्हें भी शौक है ?

नरेश : नहीं जी । केवल उर्सुलाजी के चित्रों को देखने का शौक है, बस ।

जगदीश : और संगीत ?

नरेश : जरा नहीं। सुनने का पूरा शौक है।

उर्सुला : उसका तो मुझे भी बहुत शौक है।

नरेश : और गाने का नहीं ?

जगदीश : किसे ? उर्सु को ?

नरेश : नहीं ?

जगदीश : अरे इससे अच्छा तो मैं ही गा लेता हूं। क्यों, नहीं उर्सु ?

उर्सुला : हां, लेकिन तुमने तो सीखा है ना !

नरेश : हां, तुम भी सीख लो तो अच्छा गा सकोगी। तुम्हारा गला तो बढ़िया है।

जगदीश : किसने कहा ?

नरेश : जिसने भी कहा है, बिलकुल ठीक कहा है।

(उर्सुला उठ जाती है। और कुछ देर बाद जगदीश अंदर जाता है। उर्सुला गुनगुनाती है। नरेश खिड़की से बाहर आकाश की तरफ देखता रहता है। थोड़ी देर को उर्सुला एक किताब लेकर बैठ जाती है।)

कौन-सी किताब है ?

उर्सुल : 'विवाह सफल कैसे हो सकता है ?'

नरेश : (जरा आश्चर्य से) विवाह सफल कैसे हो सकता है ?

उर्सुला : हां, क्यों ?

नरेश : बहुत विचित्र नाम लगता है, नहीं ?

उर्सुला : क्यों ?

नरेश : विवाह क्या व्यापार है कि मनुष्य उसे मेहनत से सफल कर सके ? और विवाह के विषय पर अलग से पुस्तक में क्या लिखा होगा ? क्या ये इतना गहन विषय है ?

उर्सुला : क्यों, विवाह गहन विषय नहीं है ? इसके जैसी पवित्र···

नरेश : झूठ। सब ढोंग है। विवाह एकदम छोटी चीज़ है। इसे जितनी गंभीरता से लो उतनी ही निराशा होती है। तुम तो किराये के घर में रहती हो, ठीक है न ?

उर्सुला : हां।

नरेश : तुम्हें जो चाहिए वो सभी इसमें है ? मतलब जैसा तुम चाहती हो

वैसा यह घर है ?

उर्सुला : नहीं, पर किराये के घर में ऐसा कहां से होगा ?

नरेश : और रोज तुम ऐसी बड़बड़ करती हो ना ?

उर्सुला : नहीं, लेकिन ये कोई बड़ी बात नहीं है। और विवाह तो…

नरेश : ठीक, विवाह को बड़ा विषय मानकर बड़बड़ करने का हक मिलना चाहिए। सच बात तो यह है कि पुरुष और स्त्री दोनों विवाह को सामान्य विषय मानें तो इतनी बड़बड़ाहट, इतनी निराशा या इतना दुख न रहे। जैसे किराये के घर में काम चला लेते हैं, वैसे ही विवाह में भी काम चला लेना चाहिए। केवल पति-पत्नी के दृष्टिकोण में इतनी विशालता होनी चाहिए।

उर्सुला : आप और हंसा बहन, इसी दृष्टि से जीते हो ?

नरेश : अरे, उस बेचारी की तो कोई दृष्टि ही नहीं है। विवाह क्या है, उसे तो इसका भी ज्ञान नहीं है।

उर्सुला : अरे, वाह।

नरेश : हां, हां, सच कह रहा हूं।

उर्सुला : अरे सच क्या है। भले ही पुरुषों के मन में ये तुच्छ विचार हों लेकिन स्त्री के लिए तो विवाह ही जीवन की आशा और तृप्ति है।

नरेश : यह तो तुम्हारे जैसों के लिए।

उर्सुला : नहीं, सभी स्त्रियों के लिए। झोंपड़ी में हो या राजमहल में, स्त्री तो स्त्री ही है।

नरेश : पर स्त्री और स्त्री में भी अंतर होता है ना ?

उर्सुला : होगा, पर यह भावना तो सभी स्त्रियों में होती है।

नरेश : कौन जाने, मुझे ऐसा कुछ नहीं लगता।

उर्सुला : झूठी बात है। एक बात कहूं ?

नरेश : क्या ?

उर्सुला : हंसा बहन के लिए तुम्हारे हृदय में जो प्रेम है, वह तुम स्वयं भी नहीं जानते।

नरेश : और तुम कैसे जानती हो ?

उर्सुला : ओ हो, यह तो बहुत सरल है। तुम दोनों को देखकर मुझे तुरंत पता लग गया था।

नरेश : लेकिन, किस बात से ?

उर्मिला : तुम जिस प्रकार व्यवहार करते हो उससे। मेरा भाई बिलकुल ऐसा ही था। मुझे वह बहुत चाहता था और बहुत तंग करता था। इतना अधिक तंग करता था कि चिढ़ आती थी। उसकी परीक्षा लेने के लिए ही…

नरेश : क्या ?

(विमला प्रवेश करती है)

विमला : चलो, नीचे वे लोग राह देख रहे हैं।

(सब जाते हैं)

(परदा गिरता है)

दृश्य 3

(समय : दोपहर, स्थान : नरेश का दीवानखाना। हंसा और धीमंत बैठे हैं।)

धीमंत : पर तुमने यह ठीक नहीं किया।

हंसा : क्या ?

धीमंत : तुम भूखी रही।

हंसा : नहीं, कुछ नहीं, तुम्हें क्या ?

धीमंत : लेकिन इसका कारण ?

हंसा : मुझे नहीं मालूम।

धीमंत : पर क्यों नहीं मालूम ? वह कोई भूखा रहा होगा ?

हंसा : उनकी बात अलग है।

धीमंत : क्यों अलग है ? और तुम्हारे यहां रोज़ कुछ-न-कुछ ऐसा होता ही है।

हंसा : नहीं, नहीं, कुछ नहीं होता। हम स्त्रियों के लिए तो यह सामान्य बात है। अजीब तो तुम्हें लगता है।

(इतने में उतावला नरेश प्रवेश करता है)

नरेश : अ र् र् र्, हंसा, मैं तो बिलकुल भूल ही गया कि आज तुम्हारी वर्षगांठ है।

हंसा : कोई बात नहीं, उससे क्या ?

नरेश : ओ हो, धीमंत, तुम कब से ?

धीमंत : जब से तू गया तभी से आया हूं ।

नरेश : अच्छा ? ठीक है, हंसा को मालूम होगा । ऐसा हुआ कि आज कोई ताक़ीद का काम था, इसलिए जब मैं दफ्तर जा रहा था तो जगदीश भाई रास्ते में मिले, खींचकर घर ले गये और खाना खिला दिया । वो तो अच्छा हुआ कि मुझे समय पर याद आ गया कि आज हंसा की वर्षगांठ है । तब मैं साहब की इजाज़त लेकर यहां दौड़ता हुआ आया हूं ।

धीमंत : बहुत उपकार किया, पर अब कोई लाज-शरम हो तो हंसाजी को खाना खिला दो । यह बेचारी अभी भूखी है ।

नरेश : अ र् र् र्, हंसा, तू अभी तक भूखी है ? क्यों भला ? मैंने तुझे कहलवाया तो था । आदमी नहीं आया ?

हंसा : आया था ।

नरेश : तो फिर ?

हंसा : मेरी इच्छा ही नहीं ।

नरेश : फिर तेरी इच्छा आ गयी । इच्छा क्यों नहीं ? मैं जानता हूं कि तेरे दिमाग का यह पुराना कांटा अभी तक निकला नहीं ।

हंसा : पर तुम क्यों चिढ़ते हो ? मुझे नहीं खाना ।

नरेश : ओफ्, मैं तो तुझसे बिलकुल ऊब गया हूं । यह सब हिंदुस्तानी चोंचले कब छोड़ेगी ? जानबूझकर अपने शरीर को आधा कर डाला है ।

धीमंत : जब तू इतना सब सोचता है तब आज तो तुझे यहीं रहना था ।

नरेश : हां, लेकिन मान लो कि ऐसा नहीं हुआ तो क्या हो गया ? इसलिए ऐसा व्यवहार करना चाहिए ? ऐसा कहीं होता है ?

धीमंत : यह तो भावना की बात है ।

नरेश : अरे निकम्मे । इसमें भावना कैसी ?

धीमंत : नहीं, इसमें भावना नहीं है, लेकिन पत्नी के दांत गिरने पर आलीशान कबर बनवाना वह भावना है ?

नरेश : तू समझता क्यों नहीं ? मुझे तो लाचार होकर बाहर रहना पड़ता है ।

हंसा : पर इसमें क्या हुआ ? तुम आये यह क्या कम है ?

धीमंत : बहुत है। अब तो तुम कुछ खा लो।

नरेश : हंसा, चल, जा। हठ मत कर।

(हंसा खड़ी हो जाती है और नरेश की ओर दृष्टि डालती है)

कितना झंझट है ? मनुष्य की जिंदगी में दो घड़ी भी चैन नहीं।

धीमंत : अच्छा ?

नरेश : और नहीं तो क्या ? कितने प्यार से मैं यहां आया। यहां इसकी ये झकझक।

धीमंत : तुझे भी प्यार होता है ?

नरेश : मतलब ?

धीमंत : तू ही हमें कहता है न कि 'भावना क्या है ?'

नरेश : तू तो मूर्ख है।

धीमंत : अच्छा ?

नरेश : और क्या ? मैं तो कहता हूं कि ऐसी गलत भावना नहीं रखनी चाहिए।

धीमंत : अपनी ठीक और दूसरों की गलत ?

नरेश : उहं, तू क्यों नहीं समझता ? वह ऐसे हठ करती है यह अच्छी भावना है ? उसे समझना चाहिए कि बिना उन लोगों की इजाजत लिये मैं नहीं आ सका हूंगा। फिर क्यों ऐसा किया ? उसने ऐसे ही अपना शरीर गलाया है। पहले की तस्वीर देखी है ?

(एक तस्वीर दिखाता है)

पांच वर्ष पहले ये कितनी स्वस्थ थी !

धीमंत : और सुंदर भी।

नरेश : और आज···?

(हंसा प्रवेश करती है)

धीमंत : बस ? इतनी उतावली ?

हंसा : नहीं तो, उतावली क्यों ?

नरेश : हंसा, बोल आज क्या करें ?

हंसा : करें क्या ? कुछ नहीं।

नरेश : नहीं, ऐसे नहीं। तू कह तो घूमने चलें, नहीं तो नाटक देखने चलें। क्यों धीमंत, नाटक देखने चलोगे? 'रूपहली किरण' अच्छा नाटक है। हां, नाटक देखने चलेंगे। तू भी चल।

(धीमंत नरेश की तरफ देखता रहता है)

क्यों, देख क्या रहा है? चलेगा?

धीमंत : नहीं, आज तो हंसा बहन की वर्षगांठ है, इसलिए तुम दोनों अकेले ही जाओ।

नरेश : अरे उसमें क्या? तू होगा तो मजा आयेगा।

हंसा : हां, हां, धीमंत भाई, जरूर चलो। तुम भी यह नाटक देखने को कहते थे ना?

धीमंत : अच्छा। आऊंगा कभी। चलूं, अब तो जाऊंगा।

(जाता है)

(परदा गिरता है)

दृश्य 4

(स्थान : नरेश का दीवानखाना। नरेश किसी की राह देख रहा है। कमरे में चक्कर लगा रहा है।)

नरेश : (स्वगत) अभी तक क्यों नहीं आया?

(हंसा की तस्वीर के सामने रुक जाता है, जिसे वह निश्चल नेत्रों से देख रहा है। इतने में पीछे से हंसा आती है और ठिठक जाती है। कुछ देर पश्चात नरेश उसे देखता है।)

(जरा गुस्से से) क्यों?

हंसा : नहीं, कुछ नहीं।

नरेश : तब ऐसे बुत बनकर क्यों खड़ी हुई है कि किसी को डर लगे।

(हंसा समीप आती है और नरेश के कंधे पर हाथ रखती है)

हंसा : क्यों डर लगता है?

(नरेश एकाध क्षण हंसा की तरफ देखता रहता है)

नरेश : और क्या? तू ऐसे अचानक जो आ गयी।

हंसा : मैं तो कुछ पूछने आयी हूं।

(हंसा नरेश के दोनों हाथ पकड़ती है)

नरेश : क्या ?

हंसा : सच कहोगे ?

नरेश : मतलब ? क्या मैं झूठ बोलता हूं ?

हंसा : नहीं, यह बात नहीं, पर सच-सच कहना पड़ेगा।

नरेश : **(जरा चिढ़कर)** हां, हां, बोल ना, इसमें इतने नखरे की क्या बात है ?

हंसा : तुम आज बाजार में गये थे ?

नरेश : हां, क्यों ?

हंसा : किसलिए ?

नरेश : यह सब प्रश्न किस लिए पूछती हो ?

हंसा : मुझे एक काम है।

नरेश : मैं जवाब देने के लिए बंधा नहीं हूं।

हंसा : मैं कब कहती हूं बंधे हुए हो ?

नरेश : तुमसे इन सब बातों का क्या मतलब ?

(अपना हाथ खींच लेती हैं)

हंसा : पर मुझे बताओ, तुमने कुछ मंगाया है ?

नरेश : मैं नहीं बताता। तुझसे इसकी बहस नहीं करनी।

(नौकर प्रवेश करता है। नरेश झट उसके पास जाता है और उसके हाथ से पैकेट ले लेता है।)

जा।

(नौकर जाता है)

हंसा : ये क्या है ?

नरेश : कुछ नहीं। तुझे इससे मतलब ? मेरे काम का है।

(मेज पर पैकेट रखता है)

हंसा : कह दो कि अंदर घड़ी है।

(नरेश हंसा को देखता रहता है)

नरेश : ठीक है। जानती हो तो पूछती क्यों हो ?

हंसा : उर्मुला के लिए है ? ठीक कहा ना ?

नरेश : हां, है। चैन आ गया ? जा अपना काम कर।

(नरेश एक कुर्सी पर अखबार लेकर बैठा है। हंसा थोड़ी देर बाहर जाती है। नरेश मेज पर से पैकेट उठाकर खोलता है और एक चिट्ठी उसमें रखता है। थोड़ी देर पश्चात नौकर चाय की प्याली लेकर प्रवेश करता है।)

अरे, चतुर्भुज और कुछ भी दिया था न ?

नौकर : हां जी, चांदी की तश्तरी दी थी, वह दे आया।

नरेश : कहां दे आया ?

नौकर : जगदीश साहब के यहां, साहब।

नरेश : ठीक है।

(नौकर जाता है। थोड़ी देर में हंसा आती है। उसके हाथ में एक फूलदानी है।)

हंसा : जगदीश भाई ने यह फूलदानी भेजी है।

नरेश : देखूं कैसी है ?

(नरेश फूलदानी लेता है और उसके ऊपर रखी एक चिट्ठी पढ़ता है)

ये तो तुझे भेजी है।

हंसा : हां, तुम्हें भी कुछ भेजना चाहिए, ठीक है ना ? कुछ भेजा ?

नरेश : ऐसा कह के क्या भेजा है, यही जानना चाहती हो ? लेकिन···

हंसा : नहीं, वह तो मैं भूल ही गयी थी। लेकिन नहीं भेजा हो तो भेजना पड़ेगा न ? घड़ी भेज दीजिये।

नरेश : देखूंगा। तेरी सलाह की जब आवश्यकता पड़ेगी तब पूछूंगा। जा, तू खाने की तैयारी कर। आज जल्दी जाना है।

(हंसा थोड़ी देर मौन रहती है। फिर खिड़की के पास जाती है और कुछ देर तक एक गीत गाती है।)

नरेश : यह क्या गा रही है ?

हंसा : (पीछे मुड़कर) कुछ नहीं, क्यों ?

नरेश : बिलकुल गलत सुर है।

हंसा : ठीक सुर क्या है ?

नरेश : मैं क्या जानूं ? मुझे आता होता तो मैं न गाता ? मुझे जैसा लगा

वैसा कह दिया।

(एक लड़की प्रवेश करती है)

ओ सुरमा, आओ।

सुरमा : मुझे जरा काम था।

हंसा : (नरेश से) यह सुरमा बहुत अच्छा गाती है। (सुरमा से) इन्हें सुनने का बहुत शौक है।

नरेश : अच्छा !

हंसा : उस दिन नृत्य के साथ तुम्हारा मनपसंद गीत इसी ने गाया था।

नरेश : अच्छा। बहुत ही सुंदर था।

सुरमा : तब आपको संगीत का ज्ञान ही नहीं।

(नरेश सोच में पड़ा देखता रहता है)

मुझे गाना गाना ज़रा भी नहीं आता। (हंसा से) लेकिन मैं तो काम से आयी हूं।

हंसा : बैठो तो ज़रा। (बैठती है)

सुरमा : तुम्हें पता है कि मैं अभी क्यों आयी हूं ?

हंसा : नहीं।

सुरमा : सब कहते हैं कि तुम बहुत सुरीला गाती हो, इसलिए सीधी यहीं चली आयी। मुझे वह गीत सिखा दो। अब तो तुम भी रंग में हो, तो बहुत मज़ा आयेगा।

हंसा : नहीं, मैं इतना अच्छा नहीं गाती।

सुरमा : तुम इतना सुंदर गाती हो कि सुनने के लिए रास्ते में बहुत से खड़े हो जाते हैं।

हंसा : ये कहते हैं कि यह सुर गलत है।

सुरमा : पुरुषों को स्त्री और संगीत के बारे में क्या पता ? क्यों ठीक है ना, नरेश भाई ?

नरेश : तुम कहती हो तो ठीक ही होगा।

सुरमा : हां, स्त्री और संगीत दोनों की कोमलता आप लोग क्या समझ सकते हैं ? आप पुरुष लोग तो अब इतने कठोर होते हैं कि···

नरेश : क्या मैं भी ?

सुरमा : मैं कैसे कह सकती हूं चलो हंसा बहन, वह गीत मुझे सिखा दो। हमारे गरबा नृत्य में काम आयेगा।

(**क्षण भर पश्चात हंसा गीत उठाती है।** धीरे-धीरे उसका गला खुलता है और वह तल्लान हो जाती है। स्वप्न की भांति सुरमा देखती रहती है। नरेश प्रसन्न-चित्त बैठा है। उसकी आंखों में भी आनंद की चमक दिखायी देती है।)

(परदा गिरता है)

दृश्य 5

(समय : **रात के लगभग आठ।** स्थान : **वही। नरेश और हंसा बैठे हैं)**

नरेश : चल, तू तैयार है।

हंसा : अभी तो देर है न ? मुझे जरा-सा काम है।

नरेश : आज भी काम ? उस काम के बिना क्या कुछ अटक गया है ? काम कल हो जायेगा।

हंसा : अभी धीमंत भाई भी तो नहीं आये ?

नरेश : वह तो अभी आ पहुंचेगा, पर तुझे तो तैयार होने में दो घंटे लगेंगे।

हंसा : नहीं···

नरेश : नहीं क्या ? तू किस दिन जल्दी तैयार हुई है ? रोज भेजा खपाता हूं, तब तैयार होती है। और अभी तो मेरे कपड़े भी निकालने हैं। वो बटन लगाये ?

हंसा : नहीं, अभी लगा देती हूं।

नरेश : लगा दो। जो काम करना है वो तो हुआ नहीं और बेकार काम के लिए चिल्लाती फिरती है। तुम लोगों में अकल ही नहीं। भगवान जाने तुम जैसे लोग किसलिये पैदा हुए।

(**हंसा अंदर जाती है। पल में तैयार होकर आती है**)

हंसा : लो, यह बटन लगा दिया।

नरेश : थैंक्यू।

(**नरेश अंदर जाता है। हंसा नरेश द्वारा अस्तव्यस्त किये गये फर्निचर**

को व्यवस्थित करती है और नरेश तैयार होकर वापस आता है। पलभर की शांति।)

हंसा : अरे, रमा बहन की सुरभि को कहलवाना है। उसे···

(नरेश के चेहरे पर असंतोष छा जाता है)

नरेश : तुझे क्या ? अब कौन कहने जायेगा ? तुझसे किसने कहा था कि कहलवाना ?

हंसा : पर मैंने तो तुमसे पूछकर कहलवाया था।

नरेश : तब मुझे पहले क्यों नहीं बताया ? मुझे क्या सपने आ रहे हैं ? अब न समय है और न मैं जाऊंगा।

हंसा : पर उन्हें बुरा लगेगा।

नरेश : तब रहने दे। मैं ऐसी रात में नहीं जाऊंगा। एक के बाद एक मुसीबत बढ़ाती जा रही है। सुरभि के बिना नाटक नहीं जायेंगे ?

हंसा : लेकिन···

नरेश : लेकिन-वेकिन कुछ नहीं। कह दिया कि तू भी नहीं जायेगी। ऐसे नाटक से तो न देखना अच्छा।

(कुछ देर के बाद)

रहने दे—नहीं जाना। मैं क्लब जा रहा हूं।

(जाता है)

(हंसा नरेश को जाता हुआ देखती रहती है। थोड़ी देर बाद वह खड़ी होती है। मेज की दराज में से नोट-बुक निकालती है और पढ़ती है। इतने में धीमंत प्रवेश करता है। हंसा जल्दी से नोट-बुक रख देती है।)

हंसा : आइये।

धीमंत : क्यों वह कहां गया ?

हंसा : वे तो बाहर गये हैं। नाटक जाने का विचार बदल दिया। बैठो न।

(दोनों बैठते हैं)

धीमंत : बदल दिया ? क्यों इस बीच कुछ हुआ ?

हंसा : नहीं, हुआ कुछ नहीं। मेरी तबियत ही कुछ ठीक नहीं थी, इसलिए बदल दिया।

धीमंत : क्यों, क्या हुआ है ?

हंसा : कुछ खास नहीं। जरा सिर दुख रहा है।

(धीमंत हंसा की तरफ देखता रहता है। हंसा अंगूठे से जमीन खोदती है।)

धीमंत : और वह कहां गया ?

हंसा : मालूम नहीं। सारा दिन घर में थे, इसलिए जरा बाहर गये हैं।

धीमंत : (धीरे से) हंसाजी, माफ करना, मुझे कहना पड़ रहा है कि मैं इतना बच्चा नहीं हूं जो इतनी आसानी से आपकी बात मान जाऊं। जरूर कोई बात हुई होगी। तुम्हारे वैवाहिक जीवन की निजी बातें मैं नहीं जानना चाहता, लेकिन अगर विश्वास मानो तो इतना कहूंगा कि यह सब देखकर मेरा हृदय जल उठता है।

(हंसा सोच में बैठी रहती है)

हंसाजी, इतने महीनों से मैं बराबर यहां आता हूं और तुम्हारा यह जीवन देखा करता हूं, पर अब तो एक अरसा हो गया है।

हंसा : धीमंत भाई, आप बेकार चिंता करते हैं, ऐसा कुछ नहीं है।

धीमंत : यह तो मैं देखता हूं। मुझे मालूम है कि तुमने अपनी मर्यादा कभी नहीं छोड़ी। हर स्त्री ऐसा ही कहती है। भाग्य से बंधे पत्थर को भी परमेश्वर मानकर पूजना स्त्रियों का स्वभाव है। और तो और, ईश्वर भी सुलोचना को अंधा पति देकर अपनी चतुराई दिखाता है।

हंसा : ऐसा मत कहिये। यह सब झूठ है। वो ऐसे नहीं हैं।

धीमंत : तुम नहीं कहोगी, पर मैं तो देखता हूं कि वह एक पशु से भी गिरा हुआ है। अपनी जिद में वह तुम्हारे ऊपर जो जुल्म करता है वे हद के बाहर है। तुम्हारा कोमल स्वभाव यह आघात कैसे सहन करता है, यही मुझे समझ में नहीं आता। हंसा बहन, तुम शायद नहीं देख सकती, पर तुम्हारा सौंदर्य दिन-ब-दिन कम होता जा रहा है। जो लावण्य उस फोटो में दीखता है, वह आज नहीं है।

हंसा : हम पर तुम्हारा स्नेह अधिक है शायद इसीलिए···

धीमंत : सिर्फ तुम पर। नरेश के लिए तो मेरे मन में हमेशा धिक्कार है।

हंसा : ऐसा मत कहो। वे तुम्हारे मित्र हैं। आजकल तो भाई से मित्र

अधिक होता है ।

धीमंत : हां, पर वह ऐसा मित्र नहीं । हंसाजी, एक बात पूछूं ?

हंसा : क्या ?

धीमंत : तुम बहुत सुखी हो ?

हंसा : हां, सुखी क्यों नहीं होऊंगी ?

धीमंत : नहीं, ऐसे बात मत उड़ाओ । अपने दिल से कहती हो कि तुम नरेश के साथ सुखी जिंदगी बिता रही हो ?

हंसा : देखो ना···

धीमंत : मेरी बात सुनो, मैं आज कितने समय से यह बात कहना चाह रहा था । आज तुम्हारी वर्षगांठ के दिन भाई की तरह से कहता हूं । देखो, तुम वास्तव में दुखी हो, नरेश से तुम सचमुच उकता गयी हो ।

हंसा : अरे, अरे···

धीमंत : सुनो, अगर तुम उससे वास्तव में ऊब गयी हो तो मैं तुम्हें छुटकारा दिला सकता हूं । उसे पैसे की तंगी है । मुझे भगवान ने पैसा दिया है लेकिन मुझे उसकी आवश्यकता नहीं । बाद में तुम्हारी स्वतंत्रता भी मैं वापिस दिला सकता हूं । और तुम चाहो तो मेरे साथ ही रहो । मुझे दुनिया की परवाह नहीं । अब बताओ, तुम्हारा क्या उत्तर है ?

हंसा : धीमंत भाई, तुमने भाई की तरह से पूछा है इसलिए मुझे कहना पड़ता है । तुम्हें याद है, आज सुबह ही तुमने वसंत-उत्सव की बात कही थी न ।

धीमंत : हां, और वो बात कहते हुए तुम किसी सोच में भी डूब गयी थीं ।

हंसा : हां, उसी दिन मैंने सब बात जानी ।

धीमंत : मतलब ?

हंसा : ऐसा हुआ कि उत्सव में हमें दोनों को जाना था, लेकिन कुछ झड़प हो गयी और अकेले ही चले गये । उनके जाने के बाद मुझे बहुत ही बुरा लगा, पछतावा भी हो उठा । तब मेरे मन में उनके विषय में बुरे विचार भी आये थे ।

धीमंत : तो अब क्या अच्छे विचार आते हैं ?

हंसा : सुनो । बाद में एक घंटा रो-रो कर बिताया और अंत में···

(अटकती है)

धीमंत : क्या ?

हंसा : पर किसी से, उनसे भी नहीं कहोगे न, हूं।

धीमंत : अच्छा।

हंसा : मैं इतना ऊब गयी थी कि एक बार तो जिंदगी खत्म करने का विचार भी आया।

धीमंत : अ र र र ..

हंसा : और वो वापस आयें उससे पहले सब समाप्त हो जाता।

धीमंत : फिर ?

हंसा : मुझे कुछ भी नहीं सूझ रहा था।

(हंसा धीमंत के सामने देखती है)

धीमंत : वो तो होगा ही। मैं उसकी कल्पना कर सकता हूं। फिर ?

हंसा : मैं पागलों की तरह इधर-उधर घूमती रही। उनके लिए मैं मरना चाहती थी। फिर भी उनसे अलग होने को मन नहीं करता था। उनके लिए मुझे जीने का विचार आया। ऐसे ही न जाने कितना समय बीत गया। पल में मैं रोती, पल में सोचती···तुम्हें हंसी आती है ?

धीमंत : हां, अरे नहीं। फिर क्या हुआ ?

हंसा : थोड़ी देर तो सूटकेस में से उनके पत्र निकाल कर मैं रोयी।

धीमंत : उसके पत्र ?

हंसा : हां, फिर हमारे विवाह के समय का चित्र इस मेज की दराज में पड़ा था। उसे देखने का मेरा बहुत मन था पर उसकी चाबी तो उनके पास थी।

धीमंत : फिर क्या ? बहुत हंसी की बात है। मैंने पेंच खोलकर वह निकाल लिया।

धीमंत : अच्छा। तुम बहादुर भी हो। है ना ?

(हंसा नीचे देखती है)

हंसा : नहीं, मैं क्या कर रही थी इसका मुझे ज्ञान ही नहीं था। उसे खोलने पर यह नोट-बुक निकली। देखो ये रही।

(मेज में से निकालती है और एक पृष्ठ खोलती है। धीमंत भाई, ये पढ़ो, फिर बताओ।)

(धीमंत उसे लेकर पढ़ने लगता है)

धीमंत : डायरी है ?

हंसा : हां, और जोर से पढ़ो ना।

धीमंत : **(पढ़ता है)** यह डायरी मैं किस लिए लिखता हूं, यह मैं स्वयं भी नहीं जानता। मेरे अतिरिक्त किसी भी मनुष्य के हाथों का स्पर्श इसे नहीं हुआ, फिर भी मन कहता है इसलिए लिखता हूं ···"आज से लगभग आठ वर्ष पूर्व हंसा मेरे यहां मेरी होकर आयी।" तुम्हारे विवाह को आठ वर्ष हो गये ?

हंसा : हां।

धीमंत : **(पढ़ता है)** "इस युग में हर चीज़ का विश्लेषण करने का फैशन है। हंसा के साथ अपने सम्बंध का मैं भी विश्लेषण करता हूं। मैं सुखी हूं ? हंसा सुखी है ? मैं और वो किसी अन्य व्यक्ति से विवाह करके, क्या सुखी नहीं होते ? ये प्रश्न कठिन है। मैं तो इतना ही जानता हूं कि हंसा के बिना मैं एक क्षण भी जीवित नहीं रह सकता। हंसा का हृदय मैं पूरी तरह नहीं समझ सका हूं। पर मुझे लगता है कि उसके असंतोष का कोई कारण है और वो मैं हूं। और आज कैसे समझाऊं, बड़ी मुश्किल है···मेरा स्वभाव मुझे ही समझ में नहीं आता। बहुत से मनोवैज्ञानिक भी यह नहीं समझ सके। मैं स्पष्ट कहूं। एक हंसा के अतिरिक्त और सबसे मैं ठीक व्यवहार करता हूं। अब तक किसी के साथ अकारण झगड़ा नहीं, पर हंसा के साथ तो मैं बिलकुल क्रूर बन जाता हूं, अपने मन पर काबू करने का बहुत बार प्रयत्न करता हूं, पर कुछ नहीं होता। बाद में मुझे बहुत पश्चाताप होता है, पर मुझे लगता है वह सब निरर्थक है। उसके कोमल हृदय को दुख पहुंचाने के बाद पश्चाताप करके संतोष प्राप्त करना यह ठीक नहीं। मुझे तो लगता है कि मैं उसके योग्य भी नहीं और दुख यह है कि अपने स्वभाव की यह विचित्रता मैं उसे भी नहीं समझा सकता। धीमंत के द्वारा ऐसा करने का सोचा, पर हंसा की बात आते ही मैं बात बदल जाता हूं। मुझे इसका रास्ता ही नहीं सूझता। मैं जानता हूं कि हंसा अगर जान जाये तो सब बीती बातों के लिए मुझे माफ कर देगी—पर···"

हंसा : बस, धीमंत भाई। तुम्हें अब संतोष हो गया ? 63वां पृष्ठ पढ़ो।

धीमंत : (पढ़ता है) "ग्राज एक बहुत खेदजनक प्रसंग ग्राया। उसका विस्तृत वर्णन मुझसे नहीं होता···विनिता ग्राज विह्वल हो गई थी···" विनिता, विनिता कौन ?

हंसा : है एक। बहुत ही सुंदर है। हम लोगों को उसे परी कहना चाहिए। उर्सुला की सखी है।

धीमंत : ग्रच्छा ! मैंने तो देखा ही नहीं।

(पढ़ता है) "ऐसा ही कहना उचित है। ऐसे भव्य सौंदर्य के लिए कोई शब्द भी नहीं मिलते। उसे भ्रष्ट कहें यह तो पाप है; तो फिर···ग्रो ईश्वर दुनिया में सबसे दुखदायी वस्तु ग्रनिन्द्य सौंदर्य है। सुंदर मनुष्य पापी हो ही कैसे सकता है, यही मुझे समझ में नहीं ग्राता···मुझे कितनी मुश्किल से उसे समझाना पड़ा। ईश्वर उसे संमार्ग दिखाये।"

ग्रो हो—हंसा बहन···

हंसा : देखो ना, वो ऐसे हैं ही नहीं।

धीमंत : ग्ररे, वह तो बहुत बड़ा साधु है।

हंसा : हूं न मैं खुशकिस्मत ? पर हां, एक बात तो रह गयी। ग्राज इन्होंने घड़ी मंगाई थी। मैंने सोचा कि उर्सुला के लिए होगी, पर···

(मेज को दराज में से घड़ी निकालती है। उसके ऊपर एक चिट लटकी हुई है)

देखो, ग्रच्छी है कि नहीं ?

(धीमंत लेता है ग्रौर चिट्ठी पढ़ता है)

धीमंत : "ग्रधीर शंकालीन हंसा को सप्रेम···"

हंसा : मुझे ताना मारा है। मैंने पूछा था कि उर्मु के लिए मंगायी है इसलिए।

धीमंत : एक शंका है। यह सब तुम्हारी दृष्टि, विचार बदलने के लिए तो नहीं है।

हंसा : हं-हं। क्या ?

धीमंत : घड़ी मंगायी है यह बात तुम्हें मालूम न होती तो कदाचित···

हंसा : तो घड़ी उर्सुला को दे देते, है ना ?

धीमंत : हां।

हंसा : यह कारण नहीं। उर्मिला के लिए तो इन्होंने तश्तरी पहले ही भेज दी थी।

(उतावला नरेश और सुरभि प्रवेश करते हैं)

नरेश : हंसा, चल-चल समय हो गया है। अभी तक इत्मीनान से बैठी है। चल, जल्दी कर, सुरभि भी आ गयी है। धीमंत, नाटक कब शुरू होता है ?

(हंसा सुरभि का हाथ पकड़कर नरेश का मुंह देखती मंद-मंद हंसती हुई खड़ी होती है धीमंत हंस पड़ता है।)

धीमंत : (नोट बुक देकर) ले, इसमें समय लिखा होगा।

नरेश : (हंसकर) ये यहां कहां से ?

(हंसा के पास जाता है)

हंसा : नाथ···

नरेश : हंसा···

(थोड़ी देर बाद)

हंसा, तूने मुझे माफ कर दिया।

हंसा : प्रियतम···

(परदा गिरता है)

गूंज

—उमाशंकर जोशी

पात्र

गौरी

तुलसी

पहला कालिजिएट

दूसरा कालिजिएट

किशोर

मनु

लली

रगु

किली

(समय : रविवार की शाम। बंबई की एक गली में स्थित मकान की दूसरी मंजिल की सीढ़ी के पास वाला छज्जा। सीढ़ी पर एक पुरुष कहीं जाने के लिए कपड़े पहने तैयार खड़ा है।)

पुरुष : चलो ना। खेल शुरू होने पर पहुंचेंगे तो···

स्त्री की आवाज : इन बच्चों को जरा बहला दूं नहीं तो···

पुरुष : तुम चलो आगे। मैं इन्हें ठीक करके आता हूं।

स्त्री : **(प्रवेश करके)** चलो। **(जैसे गांव से आयी औरतें बंबई में अपने मूल वेश को छोड़कर तितली बन जाती हैं, वैसे ही वह दिखती है)** किशु, तू सबको संभालना।

किशोर : **(अंदर आकर—उसकी उम्र ग्यारह वर्ष होगी)** हमें छुट्टी के दिन ले जाने के लिए कहा था तो ले क्यों नहीं जाते। इससे तो हमें गांव में ही छोड़ देते तो अच्छा होता। यहां क्यों लाये ?

(लली और मनु प्रवेश करते हैं)

लली : मां, मां, मैंने भी तुम्हारे जैसे कपड़े पहन लिये। मुझे भी ले चलो ना।

स्त्री : किशु, तुम्हारी बात वापस आकर सुनूंगी। देख, लली कहीं सीढ़ी न उतर जाये ?

किलो : **(पिता के हाथ पर चिपटता है)** मैं तो सबको भूलेश्वर के रास्ते पर छोड़ आऊंगा। बाद में ढूंढ़ते फिरना। रोज़ कहते हैं, पर नाटक दिखाने ले नहीं जाते। आप तो···

(स्त्री सीढ़ी उतर जाती है)

पुरुष : जब तुम हमारे जितने हो जाओगे तब तुम भी···

(हाथ छुड़ाकर सीढ़ी उतर जाता है)

किलो : **(कटहरा पकड़े सीढ़ियों की तरफ नीचे झुककर कान के आगे हाथ लगाकर कुछ सुनता हुआ-सा)** क्या ? काजू लाओगे ? हमें नहीं खाने तुम्हारे काजू, लेकर तो जाते नहीं।

(इतने में लगभग दस वर्ष की आयु के चार-छह लड़के प्रवेश करते हैं। दो लड़कों ने लुंगी लपेटी हुई है। मानो अभी स्नान करके आये हों, अथवा उनके

सारे कपड़े धुलने चले गये हों ।)

लली : भय्या चल । हम तुम गाड़ी देखने चलें ।

किली : मां मारेगी ।

मनु : किशु, गोकुल काका कह रहे थे ना कि तुझे नाटक दिखाने ले जायेंगे । क्यों, ले गये ? जनाब फूले नहीं समा रहे थे ।

किली : चल छोड़ भी अब ।

गौरी : किशु भाई, आओ हम खेलें ।

मनु : (**मजाक में**) नहीं किशु, हम तो नाटक करेंगे ।

किली : (**गुस्से में**) हूं··· (**थोड़ी देर बाद शांत होकर**) हम नाटक करेंगे तो फिर देखेगा कौन ?

मनु : चलो छोड़ो सब । हम बंबई-बंबई खेलें ।

गौरी : नहीं हम गांव-गांव खेलेंगे ।

मनु : पगली, गांव जायेंगे तभी तो बंबई में आयेंगे ?

किली : अच्छा चलो ।

(शोर **मच जाता है**)

(दो-तीन **लड़के देवदार के दो खाली डिब्बे ले आते हैं और एक कोने में संभालकर रख देते हैं । वहां लड़के बैठते हैं और सीढ़ी के पास दूसरे कोने में जमीन पर लड़कियां बैठती हैं ।**)

एक लड़का : हम बंबई में नौकरी करते हैं ।

दूसरी लड़की : तो हम गांव में हैं—है ना, किशु भाई ?

किली : हां, तुम्हें खेत पर जाना है, बोझ लादना है, और पशुओं की देखभाल करनी है ।

गौरी : तुम कमाकर पैसे भेजोगे ना ?

(लड़कों में फुसफुस हो रही है)

किली : मेरा तो मरा यह काम ही खत्म नहीं होता । इससे तो बंबई अच्छा है । वह नमदी गयी थी तो कैसी सेठानी होकर आयी है ।

तुलसी : मुझे तो अकेली घर में डर लगता है ।

किली : तो यह गौरी पढ़ी-लिखी है, इससे चिट्ठी लिखवा ले ना ? अपने आप बुला लेंगे ।

गौरी : या घर चले जायेंगे। हम औरतें क्या करें ?

(अंदर-ही-अंदर घुसपुस करते हैं)

किशु : देख मनु, तेरी बहन किली तो बड़ी तेज है।

मनु : और तेरी बहन गौरी ही कौन-सी कम है ? ये साले हैं तो छोटे, पर अभिनय खूब करते हैं।

रणु : गौरी, तूने डाकखाने में चिट्ठी डाल दी है ना ?

गौरी : कभी की। गांव में किसी को पता भी नहीं चलने दिया।

तुलसी : तुझे कुछ नहीं आता। किसी को पता नहीं—यह कहने की क्या जरूरत थी ?

किली : तुझे बड़ा अच्छा खेलना आता है। बड़ी होशियार बनती है। ऐसी चिट्ठी कोई खुले थोड़े ही लिखी जाती है ?

किशोर : ए···। शोर मत मचाओ। चिट्ठी तो पहुंच भी गयी। औए लालिया। तू डाकिया बन।

(लालिया दौड़ता-दौड़ता स्कूल के थैले को चिट्ठी के थैले की तरह कंधे पर डाल लेता है। हाथ में एक कागज का टुकड़ा लेकर लड़कियों के पास जाता है। सब 'मेरी चिट्ठी', 'मेरी चिट्ठी' का शोर मचाते हैं।)

लिलो : लालिया डाकिया।

लालिया डाकिया। मेरी कोई चिट्ठी ?

लालिया डाकिया। चिट्ठी-पत्तर ?

लालिया डाकिया। बंबई की खबर ?

मनु : **(दूर से)** ऐ तुम सबको उठाना पड़ेगा। इस तरह खेल खेला जाता है ? हम सब नौकरी छोड़कर आ जायेंगे, हां।

(डाकिया पुनः बंबई की टोली में जाता है। शांति छा जाती है। गौरी कागज पढ़ती है।)

गौरी : यह तो किशु भाई गोकुलदास की घरवाली की है।

तुलसी : मतलब किसकी ? मेरी ना ?

गौरी : **(बनावटी गुस्से से)** मेरे भाई के लिए तेरे जैसी कबाड़ा लड़की होगी ? जा, जा।

(सब लड़के हंस पड़ते हैं)

किली : **(अधीरता से पूछते हुए)** मेरी ? मेरी ?

गौरी : **(धीरे से घूंसा मारती हुई)** चुप रह ।

किली : मेरी है ? हां, हां मेरी है ।

गौरी : तो ले । तेरी होगी ।

(मनु चिढ़ता है)

रणु : **(लालिया से)** मनु के पिताजी गोकुलकाका किली की शादी किशोर से करने की बात कर रहे थे । मुझे क्या पता ? मेरी मां किसी से कह रही थी । ऐसा लगता है जैसे ये सब जानते हैं ।

गौरी : लिखा है···सस्तिशरी···यह तो ठीक नहीं बैठता । **(आंख उठाकर सबको देखती है)** बात इतनी है कि तुम्हें बंबई बुलाया है, इसलिए जल्दी जाना ।

किली : अरी तुलसी, तुझे कुछ कहलवाना है ?

तुलसी : उनसे कहना कि आजकल चोरों का बहुत डर है । किसान भी हमेशा घर पर नहीं रहता । भाग जाता है ।

किली : गौरीजी, तुम्हें भी कुछ भेजना हो तो दे दो, नहीं तो अभी मोटर आ जायेगी ।

(रणु मोटर की आवाज करता हुआ भागता-भागता आता है)

तुलसी : लो, यह मोटर आ गयी, बैठ जाओ । मोटर में जगह नहीं है । जल्दी करो ।

लली : बाद में···बैठने के बाद बात करेंगे । मैं चली ।

(किली रणु के पीछे कमर से लिपट जाती है)

तुलसी : **(आशीर्वाद देते हुए)** तुम्हारा भला हो ।

गौरी : ऐसी होकर आना कि गांव की सारी औरतें देखती रह जायें । हाय । मैं बलिहारी जाऊं ।

किली : बहन, मेरे घर का ख्याल रखना ।

(रणु भूं-भूं करता हुआ मोटर की भांति दौड़ता है । कमर से लिपटी किली भी साथ दौड़ती है । दोनों सामने के कोने में बंबई की टोली में बैठ जाते हैं ।)

मनु : अब तो मैं दुकान जा रहा हूं ।

किशोर : अरे भोगीलाल । मेरे सिर में दर्द है । आज काम पर नहीं जा

सकता। इन दिनों बादल कैसे घिरे रहते हैं ?

मोहन : वो तो रहेंगे ही। क्यों भाभी ? अरे, तुम्हारे आने से तो चाय भी नहीं मिली ?

किली : मुझे आये आज छह महीने हो गये, पर ऐसा लगता है मानो छह जनम हो गये हों। अब तो किसी का साथ मिले तो घर पहुंचूं।

(लड़कियों में खलबली)

रणु : क्यों, भाभी मजे में है ?

किशोर : अबे, कोई गांव जा रहा है ?

रणु : हां, कल वो रामलाल जा रहा है।

(लड़कियों में और भी ज्यादा खलबली मच जाती है। रणु की मोटर आती है। किली उतरती है। सब उसे घेर लेते हैं। किली धीरे-धीरे चलती है।)

तुलसी : जनम सफल हो गया। बंबई तो बिलकुल अलकापुरी जैसी है पर हम चार साल में वैसे के वैसे ही रहे।

किशोर : **(लड़कियां किली के समाचार पूछने के लिए शोर मचाती हैं)** इन गर्मियों में बिना घर जाये काम नहीं चलेगा। भाड़ में जाये यह दुनिया का बवाल।

रणु : तू अपनी सेहत को देख ? एकाध महीने के लिए जरा हवा बदल आ।

किशोर : मुझे घर पर चाय भेजनी है, पर भेजूं किसके हाथ ? ···औरतों की यही मुर्खपन है। एक बार बंबई आयीं तो गांव में भी वही शौक करेंगी।

रणु : पर तुम्हें और खर्च ही क्या है ?

किशोर : अरे, मेरे दिल की परेशानी तुझे क्या मालूम ?

लालिया : इस स्वराज के चक्कर में सब लोग 'डिफिकल्टी' में आ गये।

मनु : ए लालिया। खबरदार जो अपने बापू की तरह स्वराज के विरुद्ध बोला।

(शोर मचाता है)

किशोर : **(शांत भाव से)** आओ, गौरी बहन।

गौरी : हां, मजे में तो हो सब ? बहुत दिनों में मिले। मेरे भाई की कोई

चिट्ठी-पत्तरी है ? बेटा तो मजे में है ना ?

तुलसी : हट पगली। लड़की हुई है यह भी नहीं मालूम ? तुझे खेलना किस दिन आयेगा ?

गौरी : अरी चल।···(सीधी बनकर) बंबई में घर बसाया फिर भी करम में लड़की ही···

(लड़के सुन लेते हैं)

किली : जो जिसका भाग्य।

तुलसी : इसमें भाग्य की क्या बात है ? तू भी उस रणुए की मां की तरह कहती है ? बेटी क्या बुरी होती है ?

(रणु आकर तुलसी को एक चुटकी भर कर चला जाता है)

गौरी : पालने में सो रही है ?

तुलसी : **(किली से)** बोलती क्यों नहीं ? यूं ही हां कह दे।

किशोर : **(दूर से)** यूं ही क्यों ? गौरी, तेरी वो रबड़ की गुड़िया किस काम आयेगी ? इतने बड़े हो गये पर खेलना किसी को नहीं आता।

(गौरी दौड़कर रबड़ की लाल गुड़िया ले आती है। तुलसी, लली उसे प्यार करती हैं)

किली : रुलाओ नहीं, लाओ, जरा चुप करा दूं। **(लेकर छाती से लगती है)** ले बिटिया दूध पी।

लली : पी नहीं रही ?

तुलसी : तो क्या कर रही है ?

किली : अरी पगली··· यह सचमुच की थोड़े ही है ?

गौरी : तू होगी पगली।

लली : तू पगली ।

(सब 'तू पगली', 'तू पगली' करते हैं)

किशोर : मैं तो घर जा रहा हूं।

मनु : तो मैं भी चलता हूं। इस नौकरी से तो परेशान हो गया हूं। इससे तो गांव में हल चलाकर पेट भरना अच्छा।

रणु : वहां घर में तो रहेंगे।

गुजराती एकांकी

मनु : और मेहमान-वहमान की आवभगत भी हो सकेगी।

(रणु की मोटर भूं-भूं करती आती है। उसके पीछे कमर से किशोर और किशोर की कमर से मनु चिपट जाता है। मोटर दौड़ती है। बीच में सब्ज़ी लिये हुए एक औरत उससे टकरा जाती है और 'मरे बेशर्म' कहती हुई चली जाती है। किशोर और मनु उतरते हैं। सब उन्हें घेर लेते हैं।)

सब : कौन ? किशु भय्या और मनु भय्या आये हैं।

गोरी : अब तो किशु भाई, दो साल घर रहोगे ना ?

शरीर तो बिलकुल सूखकर कांटा हो गया है।

किशोर : और फिर घर-गृहस्थी भी तो चलानी है।

मनु : **(तुलसी से)** तुम अच्छा साथ देखकर बंबई चली जाना।

किशोर : हां, उसका सेठ जो पलभर के लिए भी छुट्टी नहीं देता।

(सब हालचाल पूछते हैं। शोरगुल में प्रश्न-उत्तर कुछ भी सुनायी नहीं देता)

लालिया : अबे मोहन। किशु भय्या गांव गये हुए हैं। तू उनके कमरे में सो जा ना।

(ऊपर की सीढ़ी से दो 'कालिजिएट' धीरे-धीरे आपस में बात करते हुए उतरते हैं।)

मोहन : **(हटकर)** क्यों ?

लालिया : गोकुल भाई की—अरे रणु भय्या की बहू आयी है। तुझे नहीं मालूम ?

मोहन : तो तुम कहां जाओगे ?

लालिया : अपन तो सीढ़ी के पास छज्जे में ही पड़े रहेंगे।

(कालिजिएट बच्चों के बीच से मार्ग बनाते हैं)

पहला कालिजिएट : **(उसकी आंखों पर चश्मा है)** इस मंजिल में हमारे देश के लोक-जीवन की गूंज गूजती है।

दूसरा कालिजिएट : कैसे ?

पहला कालिजिएट : **(उंगली से)** इन बच्चों से।

दूसरा कालिजिएट : बच्चे तो बाबा आदम के जमाने से मां-बाप की वासना की गूंज हैं। है ना ?

(मार्ग बनाकर उतर जाता है)

मोहन : (जहां से हटा था उसी जगह आकर कालिजिएट की तरह) ओ गोटमेट चश्मुद्दीन ।

लालिया : जाने दे ना । तू क्या कह रहा था ? हं···सोने की···

मोहन : हां, मैं यह कह रहा था कि तेरे बाबू रोज ऐसी ठंड में छज्जे पर सोते हैं, उन्हें ठंड नहीं लगती होगी ? गोकुलकाका दूसरा कमरा क्यों नहीं ले लेते ?

लालिया : साला सेठ तन्खा ही कितनी देता है ?

मोहन : यह तो गोकुलकाका कंजूस है। पर अपने लिए तो सब कुछ चाहिए ।

लालिया : बिलकुल ठीक कहते हो ।

मोहन : हां । मेरे बापू बिना कारण ऐसे थोड़े ही करेंगे ?

(गांव में शोरगुल)

किली : इससे तो बंबई में क्या बुरा था ? यह गधामजूरी···

किशोर : तो मुझे घर आने के लिए बार-बार चिट्ठी क्यों लिखवायी थी ? साली औरत की पागल-जात ।

लालिया : **(दूर से)** कौन मैं ? मुझे चिट्ठी लिखनी है क्या ?

(लालिया डाकिया बनकर आता है। कागज का टुकड़ा लेकर)

लली : किसकी चिट्ठी है ?

किशोर : मेरी है ? **(पढ़ता है)** बुरी खबर है । दुकान के समाचार । चिट्ठी पढ़ते ही तुरंत नहीं आओगे तो दूसरा मुनीम रख लेंगे। **(किली से)** अब बनाती रहना चाय ।

लली : **(खुशी में)** अब तुम बंबई जाओगी ?

किली : **(मुंह उतर जाता है)** कहां जायेंगे ?

किशोर : बंबई और गांव—दो घर का खर्चा अपने से नहीं चलता ।

(गणु भों-भों करता है। उसकी कमर से लिपटे किली और किशोर बंबई चले जाते हैं ।)

लालिया : ठीक हुआ जो सोमवार से पहले आ गये ।

किशोर : ऐसी नौकरी दुबारा मिलनी मुश्किल थी ।

मोहन : इसी नौकरी की वजह से तो गोकुलकाका मजे करते हैं ।

रणु : तुम बहुत लोभी हो। ऐसी अच्छी नौकरी है पर अच्छा मकान नहीं लिया जाता। अरे मोहन और लालिया। क्या नाम है उनके बापू का—जबान पर आ रहा है, कहां छज्जे में पड़े रहते हैं, बेचारे।

किली : (कटाक्ष से) ये दो बार बंबई आये, पर एक बार भी किसी ने कहा कि चलो नाटक दिखा लायें ?

रणु : सच्ची बात है।

लली : हमें ले चलोगे ना ?

(देश और बंबई वाले नाटक का नाम सुनकर इकट्ठे हो जाते हैं)

किशोर : चल। अब कितनी देर है ? खेल शुरू हो जायेगा तब निकलेगी ?

किली : ऐ···आयी। जरा बेबी को छोड़ आऊं।

(छोड़ने जाती है)

लली : हमें ले चलो ना। मां और पिताजी भी नहीं ले गये और तुम भी···

किशोर : हमें भी मां और पिताजी कहां ले गये हैं ?

लली : देखो ना फिर ? आप तो···?

किली : (आकर) चलो।

किशोर : (लली उसकी बांह पकड़ती है) जब हमारे जितने होवोगे तब तुम भी···

(सीढ़ी की तरफ जल्दी से उतरने लगते हैं। पर जैसे बिजली हो ऐसे एकदम वापिस आ जाते हैं। स्त्री-पुरुष ऊपर आते हैं।)

पुरुष : (गुस्से से) कंबख्त। एक तो हमारे खेल का समय चुका दिया और अब नकल उतार रहे हैं ?

(थप्पड़ लगाता है। किशोर रोता है। सब स्तब्ध रह जाते हैं। बीच में स्त्री की शांत आवाज आती है।)

स्त्री : ले री लली। ले चीज़।

(परदा)

पुराना जोड़ा

—दुर्गेश शुक्ल

पात्र

लाधो

अमथा

सुखराम दादा

दीवाली

रूखी

फूली

(संध्या का समय है। मोचीवाड़े में शांति का साम्राज्य छाया हुआ है। घर के ओसारे, बगल के कमरे में लाधो मोची अंधेरे में आत्मज्ञान के फैले प्रकाश में भजन गुनगुनाता हुआ बैठा है।)

लाधो : रे काया रे हंसा, डोलना लगा है।
उड़ गया हंस पिंजरा पड़ा हुआ है।

मेरा हंस छोटा और पिंजरा पुराना पड़ गया है। मीरा बाई कहती है प्रभु···

(सुखराम दादा आते हैं)

दादा : अरे लाधा है क्या ?

लाधो : हां दादा, हूं। कौन, सुखराम दादा ? बड़े सौभाग्य। इस ओर कहां ?

दादा : **(सीढ़ी पर बैठते हुए)** अरे बिना काम कोई आता है ? जरा जूतों में टांके लगवाने आया था।

लाधो : लाओ दादा दो। अभी सी देता हूं। इसमें क्या देर लगती है ?

दादा : **(जूते उतारकर देते हुए)** ले भाई, जरा मजबूत टांका लगाना। फिर उसी जगह से फटा है।

लाधो : चिंता मत करो दादा। इस बार उससे भी मज़बूत कर दूंगा। **(जूते हाथ में लेकर)** ओ ओह··· । ये जोड़ा। यह तो मैंने अपने ही हाथों से बनाया था। आजकल करते हुए दस साल बीत गये। कितनी ही सर्दी, गर्मी, वर्षा बीत गयी।

दादा : अभी तो दस साल और निकालेगा। **(हंसते हुए)** और जब मरूंगा तो कहता जाऊंगा कि मेरे पीछे तेरहवीं में ब्राह्मण को दे देना।

लाधो : पुराने जमाने के लोग चीज़ की कदर करते हैं। आजकल के लोगों में उसकी कदर नहीं। हम तो सिल-सिलाकर पहन लेते हैं। उनके लिए तो इधर फटा, उधर फेंका।

दादा : बेटा जल्दी पछतायेंगे। अब तो तू जल्दी कर। मुझे खाना भी खाना है।

लाधो : ओ ओह, करता हूं। **(आवाज देते हुए)** अरी ओ अमथा की मां, जरा लालटेन बाहर तो लाना।

रूखी : (**अंदर से**) लालटेन से तो तुम्हारा लाड़ला पढ़ रहा है ।

लाधो : तो दीया ले आ ।

रूखी : तो रसोई में क्या मैं आंखें फोड़ूं ? अभी तुम्हारे लाड़ले की बहू को रोटी खाने के लिए भी चाहिए ।

लाधो : पर यहां ग्राहक को देर हो रही है ।

रूखी : कल दिन में आने के लिए कह दो ।

लाधो : तू समझती नहीं, अमथा की मां । दादा आये हैं ।

दादा : अरे हां—रूखी बहू । जरा टांका लगवाने आया हूं ।

(घूंघट निकाल कर हाथ में दीया लिये रूखी बाहर आती है)

रूखी : मुझ मरी को क्या पता था कि दादा आये होंगे । तुम्हारा पढ़ाकू बेटा 'सदेवंत सवंडगा' की कहानी पढ़ रहा है और उसकी बहू लंबी ताने सुन रही है । मैं कुछ कहूं तो सामने से खी-खी, खी-खी करती है ।

लाधो : (**धागा पिरोते हुए**) सुई के छेद में धागा पिरोते हुए तो हाथ कांपते हैं, दादा ।

रूखी : लाओ मुझे दो । मैं पिरो देती हूं । (**पिरोती है**) लो ।

लाधो : लो, तागा गिर गया । दादा, आंख की रोशनी अब कम हो गयी है । ठीक से दिखायी नहीं देता ।

दादा : बहुत बुरा है । बुढ़ापे में आंखों का खोना कम दुख की बात नहीं, लाधा । और सब तो ठीक, पर हर पंद्रह दिन के बाद मुझे टांके कौन लगा के देगा ? तेरी कमी मुझे तो महसूस होगी ।

लाधो : महसूस तो तुम जैसे को ही होगी । बाकी सब के लिए तो फटे जूते जैसा हूं । मेरे अमथा की तो यही मर्जी है कि कब बाप मरे और हम मनमानी करें ।

रूखी : (**हाथ लंबा करके**) हां, करेंगे । मैं तो बैठी रहूंगी ।

लाधो : तब कोई मुसीबत नहीं । मुझे तेरा भरोसा है । पर अपने शरीर का कोई भरोसा नहीं, अमथा की मां ।

रूखी : (**लहजे से बोलती हुई**) उसकी चिंता मत करो । इस शरीर को कुछ नहीं होगा ।

लाधो : तब तो हमारे धन्य भाग्य । (**निःश्वास छोड़ते हुए**) जवानी रात-रात

भर काम करके बिता दी। मन में था कि आंख चली जायेगी तो कोई बात नहीं। बेटे की आंख से देखेंगे। आशा तो होती है पर किसकी फली है जो मेरी फले।

रूखी : बेटे की आंखें तो कहीं चली गयी हैं। देखता ही बहू की आंखों से है। वही मरा अंधा है। तब तुम्हारा काम कहां से होगा ?

लाधो : **(दुखी होते हुए)** अपने बेटे को अंधा मत कहो।

रूखी : क्यों न कहूं ? अपने को नहीं कहेंगे तो क्या पराये को कहेंगे ? और फिर मेरे कहने से क्या वो अंधा हो जायेगा ? मरे की दो आंखें हैं। देखो तो कैसी सकोरे जैसी हैं।

लाधो : आंखें तो बहुत अच्छी हैं। पर यह पिक्चर का भूत लगा है और अब तो हफ्ते में दो-तीन बार शुरू कर दिया है। आंखें बिगाड़ेगा।

रूखी : उसके सिखाये पर चल रहा है। मरी पीछे से भी तो खुसर-पुसर करती है। उसको जाने का क्या कम शौक है ?

लाधो : जवान बच्चे हैं। इस उम्र में जितना कर लें उतना अच्छा है। ये क्या तू नहीं जानती, अमथा की मां ?

रूखी : **(माथा पीटते हुए)** अमथा की मां के भाग्य तो शादी के दिन से ही फूट गये। मेरे कौन से सुख के दिन थे, जो सुख लूटते। मैं तो पीहर और ससुरे दोनों ही जगह दुखी हूं। कहीं भी आराम से बैठना नसीब नहीं हुआ।

लाधो : होगा। भगवान की इच्छा। अब तो शांति है।

रूखी : हां है शांति। जबसे तुम्हारे लाडले की बहू ने घर में पैर रखा है तब से हर चीज़ को पंख लग गये हैं। देखते नहीं सारी चीज़ें सफाया हो गयी हैं।

लाधो : बहू-बेटी की निंदा नहीं करनी चाहिए। जैसी भी है आखिर अपने घर की लक्ष्मी है। उसी से हम सुखी हैं।

रूखी : **(तड़ाक से)** क्या कहा ? लड़के की बहू की इस तरह खुले आम तारीफ़ करते शर्म नहीं आती ? इतनी उम्र हो गयी।

लाधो : **(नरम पड़ते हुए)** पर···वो···मैं···

रूखी : तुम्हारी आदत जानती हूं ना। अब चुप रहो। अच्छे नहीं लगते ?

(लाधो निरुत्तर होकर चुप रह जाता है)

दादा : हैं री, बहू अच्छी नहीं है ?

रूखी : बिलकुल पौंगी है दादा, पौंगी। लड़के के साथ ही लगी रहती है। दो आदमियों में उठना-बैठना नहीं आता। खाना पकाना नही आता। न लाज है न शर्म। चौबीसों घंटे मुंह चढ़ा रहता है और कमर टूटी हुई। कुछ कहो तो मेरी मां का सियापा करने बैठ जाती है।

दादा : अरे राम, यह तो दुख की बात है।

रूखी : दुख की कैसी ? **(नाक का स्वर खींचते हुए)** मेरा मन जानता है। न किसी से कहा जाता है न सहा जाता है। ऐसी बात है दादा।

(रूखी निःश्वास छोड़ती है। लाधो बात बदलते हुए)

लाधो : दादा, जूते सूख गये हैं।

दादा : तो तू इतना काम कर कि इस पर तेल लगाकर रख दे। आज रात यहीं रहने दे। कल सुबह ले जाऊंगा।

लाधो : ठीक है दादा।

दादा : यह ले पैसे।

लाधो : नहीं दादा तुमसे पैसे नहीं।

दादा : अब ले न भाई।

लाधो : नहीं दादा। ब्राह्मण को देना तो दूर रहा लेने की बात करते हो।

दादा : तब ठीक है। अच्छा राम राम।

लाधो : राम राम, दादा।

(सुखीराम दादा जाते हैं, लाधो पानी के बर्तन में जूते भिगोकर एक तरफ रख देता है।)

हे राम। हे अंतर्यामी। तेरा ही आसरा है, मेरे नाथ।

रूखी : **(धीरे से हलके और मधुर स्वर में)** सुनते हो ? जरा एक बात करनी है।

लाधो : ओ होऽऽ

रूखी : ओ होऽऽऽ क्या ?

लाधो : ऐसी मधुर बोलती हो तो आत्मा प्रसन्न हो जाती है, अमथा की मां।

ये रे काया मेरे हंसा···

रूखी : (झिड़कते हुए) मैंने कहा सुनो, क्या राग अलापने बैठ गये।

लाधो : बोलो क्या हुक्म है ?

रूखी : वो मरा काले खां···सिपाही

लाधो : हां···वो।

रूखी : दो टिकट अमथा को दे गया है।

लाधो : हां ठीक है। चलो अब चलें।

रूखी : कहां जाने की बात है, कुछ समझे ? वही मेरी जान की बला !

लाधो : अमरापुरी जाने की बात है क्या ? उसके अलावा और कहां के टिकट होंगे।

रूखी : तुम भाग्य में अच्छे मिले हो। हर बात में तुम मुझे आगे कर देते हो। पर मैं भी तुम्हें अच्छी···

लाधो : (हंसता है) आगे करूं···हूं। अच्छी बात है। अपने राम तो पोटली बांधे बैठे हैं।

रूखी : (सांस में उंगली फिराते हुए) क्यों मुझे चिढ़ाते हो ? मेरी मरी जीभ भी काटने लायक है। उल्टी सीधी बोल जाती है।

लाधो : ठीक है दिल में कुछ नहीं रखना चाहिए। जीभ है उसमें हड्डी थोड़े ही है।

रूखी : ये···मैं जरा ये कह रही थी···

लाधो : हां।

रूखी : फिर तुम कहो तो मैं अमथा के साथ पिक्चर देखने जाऊं।

लाधो : हां पर···अमथा अपनी बहू को नहीं ले जा रहा ?

रूखी : वह टिकट तो उसी के लिए लाया है, पर मैं भी ऐसी पक्की हूं कि उसे जाने नहीं दूंगी। आज कलमुंही को घर में बंद करके जाऊंगी।

लाधो : अमथा की मां, इस उम्र में हम जायें, यह शोभा नहीं देता। हम बच्चे थोड़े ही हैं। अच्छा है बेचारे चले जायें।

रूखी : (घूरते हुए) जायें तो खाल खींच लूंगी। (खड़े होकर) आज तो मैं जाऊं और उसे घर में रक्खूं, हां।

लाधो : पर जरा ठहरो तो।

रूखी : मुझे देर हो रही है। और अभी मुझे तैयार भी होना है।

लाधो : ठीक है···जाओ···राम, राम, राम **(गाता है)**

'है आत्मा छोटी और शरीर पुराना हो गया।'

(अमथा बाहर आता है। मुंह पर क्रोध है)

अमथा : पिताजी, पिताजी। आप कुछ कहो ना। मां कुछ सोचती ही नहीं। लोग देखेंगे तो कितना बुरा लगेगा ?

लाधो : हूं, **(तेज आवाज में)** बुरा क्यों लगेगा ? बहू को ले जाते शर्म नहीं आती, मां को ले जाते शर्म आती है ? तुम्हारा ही दिल है, उसका नहीं ? **(धीरे से)** ले जा ना एक बार। बला टले। अपनी धुन की पक्की है तेरी मां।

अमथा : भले-बुरे का विचार ही नहीं करती मां।

लाधो : राम, राम, राम।

(रूखी बन-ठन कर बाहर आती है)

रूखी : बहू अपने ससुर को खाना खिला देना और फिर सब ढक कर रख देना। ध्यान रखना कुछ खुला न रह जाये। तेरी बिल्ली मां सब चट कर जायेगी।

दीवाली : **(तिरस्कार पूर्ण स्वर से)** बिल्ली होगी तुम्हारी मां।

रूखी : **(तड़ककर)** मेरी मां को गाली देती है। जीभ खींच लूंगी। देख क्या कह रही है, अमथा, लगा मुंह पर एक जूता।

अमथा : **(परेशान होता हुआ)** तुझे आना हो तो आ, मां। मुझे देर हो रही है। मैं चला।

रूखी : आ रही हूं। **(लाड़ में)** सुना ? घर संभालना। बहू से कहना खाना दे दे।

लाधो : अच्छा। संभलकर जाना। हे राम तेरा आसरा।

(अमथा के पीछे-पीछे रूखी जाती है। फूली चाची उसके आंगन में आकर आवाज लगाती है।)

फूली : अरी दीवाली बहू है क्या ?

दीवाली : ओ फूली चाची, क्या है ?

फूली : जरा जामन देना। तेरी सास घर पर नहीं है ?

दीवाली : वो तो गयी।

फूली : कहां ?

दीवाली : सिनेमा देखने।

फूली : हैं ? क्या देखने गयी है ? सिनेमा।

दीवाली : जोड़े से गयी है, अपने बेटे के साथ।

फूली : और तू ?

दीवाली : मैं घर रह गयी। क्या करूं।

फूली : अ र् र्—इस उम्र में भी मरी को लाज शर्म नहीं है ? अमथा तुझे क्यों नहीं ले गया ?

दीवाली : दो ही टिकट थे। फिर वो भी क्या करें ? हमारी सासजी छोटी बहू होकर आगे हो गयी। लाओ जामन ला दूं।

(कटोरी में जामन लाकर फूली को देकर दीवाली वापस घर के अंदर जाती है।)

लाधो : **(बड़बड़ाते हुए)** छोटी बहू ही तो है। लड़के की जवान बहू बेचारी घर में मन मसोसकर पड़ी रहे और बूढ़ी सास सिनेमा देखने जाये। उल्टी चाल नहीं है तो क्या है ?

(निर्णय करके) बहू। बेटी तैयार हो जाओ।

दीवाली : **(बाहर देखते हुए)** खाना लगाऊं पिताजी ?

लाधो : खाना नहीं बेटा। तुम उठो और कपड़े पहनो।

दीवाली : कहां जाना है ?

लाधो : सिनेमा देखने।

दीवाली : प···र

लाधो : पर-वर पीछे करना बहू। नहीं तो देर हो जायेगी। जल्दी चलो। आज तुम्हारी सास को दिखा देंगे कि केवल वही शौक नहीं कर सकती। हां **(दीवाली तैयार होकर बाहर आती है)** तुम आगे चलो। मैं यह ताला लगाकर **(ताले में चाबी घुमाते हुए)** आया। फूली बहन, जरा घर को देखती रहना।

फूली : कहां चले, लाधो भाई ?

लाधो : बहू को सिनेमा दिखाने। उसकी सास उसे छोड़कर चली गयी।

फूली : ऐसे जाया जाता है ? लोग क्या सोचेंगे ?

लाधो : इसकी उसे क्या चिंता ? जिसने छोड़ी लाज उसका अपना राज ।

फूली : ऐसे कहीं होता है ? कल पता चलेगा उसे । सबके बीच में बेइज्जती करूंगी ।

लाधो : बेचारी छोटी बच्ची रो रही है । तो मन हुआ कि छोड़ आऊं । जब तक फिल्म चलेगी, मैं तो बाहर ऊंघता रहूंगा । मुझे उसमें क्या समझ आयेगा ?

फूली : हां, हां···तुम उसे ले जाओ लाधो भाई । उस बेचारी की शादी का यह पहला साल है खुशी नहीं होगी क्या ? ले जाओ ।

(लाधो ताला लगाकर जाने लगता है । मंच पर थोड़ी देर के लिए अंधेरा हो जाता है । पुनः प्रकाश होता है । आंगन में सूर्य की हल्की रोशनी में बैठा हुआ लाधो मोची सुखराम दादा के जूते सीता हुआ भजन गा रहा है ।)

लाधो : "वैष्णव जन तो तेने कहिये जे पीर पराई जाणे रे ।
पर दुःखे उपकार करे तोये मन अभिमान न जाणे रे ।।"

(चाय का प्याला लेकर रूखी आती है । पति के पास चाय रख कर उकडूं बैठ जाती है । मुंह चढ़ा हुआ है और आंखों में क्रोध है ।)

लाधो : ओऽऽ हो आज तो तुम आयी हो चाय देने ?

रूखी : लड़के की बहू के साथ सिनेमा जाते शर्म नहीं आयी ? उम्र का भी ख्याल नहीं आया ?

लाधो : तुझे छोटी बन कर जाते शर्म नहीं आयी, हूं ? बोलती क्यों नहीं ?

(रूखी खड़ी होकर गुस्से में अंदर चली जाती है । अमथा बाहर आता है । वह चेहरे से खुश प्रतीत होता है ।)

अमथा : लाओ, पिताजी, मैं सी देता हूं ।

लाधो : (जूते देते हुए) बहुत दिनों में बूढ़े बाप पर दया आयी, अमथा ?

अमथा : खूब रंग जमाया, पिताजी । बेचारी बिना देखे रह जाती । कल आखिरी दिन था । आज फिल्म बदल गयी है । बड़ी मुश्किल से टिकट मिले थे

तो मां बीच में आ गयी। उसके आगे मेरी क्या चलती, पिताजी? बात-बात में झिड़क देती है। रोए-पीटे बिना तो कोई बात ही नहीं।

लाधो : क्या करूं बेटा? बेचारी रोती थी। मुझसे देखा नहीं गया। उसका भी तो दिल है।

अमथा : मुझे सब बातें बतायीं। पर आपने रंग खूब जमा दिया।

लाधो : तेरी मां गुस्सा तो हुई होगी?

अमथा : हो तो हो। जल-भुन के राख हो गयी। पर करे क्या? और फूली चाची ने सुबह सुना कर बाकी कसर पूरी कर दी।

लाधो : भला हो उसका। क्या कहा?

अमथा : कहा था कि मेरी छोटी बहू बन कर जाते तुझे शर्म नहीं आयी।

लाधो : अच्छा किया। तेरी मां है ही इस लायक।

अमथा : वो तो है ही, पिताजी। तो आपने काकी से यह भी कहा कि बहू को सिनेमा में बिठा कर आप बाहर बैठे रहेंगे।

लाधो : हां, मुझसे बहू के साथ थोड़े ही बैठा जाता।

अमथा : पर आप तो उसके साथ ही बैठे थे।

लाधो : हां, पीछे मुझे लगा कि छोटी बच्ची है अकेले कैसे छोड़ा जा सकता है?

अमथा : ठीक किया, पिताजी। वहां तो गांव के गंवार आते हैं। उनके बीच में अकेली औरत कैसे बैठती?

लाधो : तूने हमें कब देखा?

अमथा : बताऊं? आप दोनों जब प्याले से मुंह लगाये चाय पी रहे थे तब देखा था।

लाधो : तो क्या चाय न पिलाता? मन की मन में रह जाती कि बड़ों के साथ सिनेमा गयी और चाय भी नहीं पिलायी।

अमथा : मना किसने किया था? तुमने खूब मौज करायी। बाद में घोड़ा गाड़ी में बिठा कर लाये।

लाधो : हां, तुमसे पहले घर पहुंचने में ही अच्छा था। तेरी मां तो जोर-जोर से बोलती पर गली के आदमी सुनते इस डर से चुप रह गयी।

अमथा : रंग जमाया तुमने तो, बापू, खूब जमाया ।

(सुखराम दादा आते हैं)

लाधो : आओ सुखराम दादा, आओ ।

दादा : क्यों, लाधो भाई, जूते तैयार हैं ?

लाधो : लो देख लो दादा ।

दादा : **(जूते को चारों तरफ से देखते हुए)** सिलाई ठीक से की है ना ?

लाधो : हां, दादा हां । अमथा ने की है । जवान हाथों की सिलायी है । जायेगी कैसे ? अब यह दस साल और निकालेगा । अमथा मेरा कारीगर है, हां । **(थोड़ी देर ठहर कर गंभीर स्वर में)** मुझे तो इतना ही कहना है, दादा, कि भाई पुराने जूते इस तरह कोने में मत फेंको, जरा सिलायी करो, पानी में डालकर मुलायम बनाओ और इस्तेमाल करो । यह कुछ काम आयेगा । सिलायी करने में कारीगरी होगी तो तुम्हारा काम चलेगा और हमारा शरीर भी सुधरेगा । ठीक है ना, दादा ?

(परदा धीरे से मंच को ढक देता है)

गट्टु की मां

—चुन्नीलाल मड़िया

पात्र

डाहीबाई

सूरज

धीरो

कुरजी सेठ

गटु

(परदा खुलते समय ड्योढ़ीबंध बैठक के नीचे की छह सीढ़ियों पर कमरे तथा आंगन के भाग में मोहल्ले का दृश्य दिखता होता है। मोहल्ले के बायें हाथ पर थान का अर्ध भाग दीखता है, जहां एक घोड़ी तथा एक छोटी भैंस बंधी है। दोनों के मध्य एक खूंटा खाली पड़ा है। मोहल्ले के दायें हाथ पर सिली हुई बोरियों का एक ढेर पड़ा है। तथा पास ही तोलने के लिए तीन लड़ियों के खूंटे को पिरोकर बनाया हुआ कांटा और घोड़ी खड़ी है। तोल-तोलकर थका हुआ कांटा, डंडी, सुयां-सुतली आदि कमरे में एक ओर पड़े हुए हैं।

कमरे के आसपास दो कोठरियां हैं। बायें हाथ की कोठरी के पास पलहैंडी है, जिस पर—पानी छानो दो—दो बार लिखे हुए हैं। दायें हाथ पर कोठरी के पास रसोई-घर है। दोनों कोठरियों की ऊपरी चौखट पर पेड़ तथा तोते की चित्रकारी वाली मोटे कांच के मोती की झालर टंगी है, चौखट के आगे के सिरे पर बारीक मोती के जड़े गणपति हैं। इसके अतिरिक्त दोनों ऊपरी चौखटों पर जड़ी हुई सीधी लकड़ी की पट्टी पर भी मोती का कुछ काम है।

शेष चित्रों में श्री तपस्वीजी महाराज, पंचपरमेश्वरी नवकार, मंगलमंत्र तथा कुटुंब के बच्चों के चित्र हैं। एक कील पर बेंत टंगी हुई है।

सीढ़ियां चढ़ते ही, कमरे के बीचों-बीच आधार स्तंभ हैं, जिसका आसमानी रंग बार-बार छूने से मिट गया है। जहां-तहां चबायी हुई दांतन के सूखे तिनके पड़े हैं। ऊपर एक खूंटी है, जिस पर दुकान की चाबियों का बड़ा गुच्छा तथा अनाज की बोरी में से चीज निकालने के दो-तीन पात्र टंगे हुए हैं। थंभे से सटी हुई डाहीबाई बैठी है।)

डाहीबाई : हे भगवान्, अब तो बाजी तेरे हाथ में है। तेरे सिवा और कौन उस फूल जैसे लड़के को देखेगा ? बेचारा बिना मां का हो जायेगा। बिना मां के इसे कौन अपना कहेगा ? **(थोड़ी देर बाद)** मैं मर गयी तो, नयी मां आयेगी पर सगी जैसी तो ···।

(बायीं ओर दरवाजा खुलने की आवाज आती है। सूरज प्रवेश करती है)

सूरज : (कमरे की सीढ़ियां चढ़ते हुए) क्या भाभीजी ?

डाहीबाई : **(पीठ फेरकर) कौन ? सूरज बहू ?**

सूरज : **(जानकर धीमी आवाज में)** बहू की बीमारी इतनी बढ़ जायेगी इसका तो मुझे ख्याल भी नहीं था। तुम्हारे देवर कह रहे थे कि राजकोट से मोटर आयी, मुझे तो तभी पता चला।

डाहीबाई : हां भई, सब कहते हैं, कि बुलाओ—अरे क्या कहते हैं वो—सर्जन को। एक वो ही बाकी रह गया था। तेरे जेठ तो बहू, बहुत नर्मदिल हैं। बहू के पीहरवाले जैसे नचाते हैं, वैसे नाचते हैं…।

सूरज : **(बीच में बात पूरी करते हुए)** मैं क्या नहीं जानती ? यह तो शुरू से ही पराये मुंह पानी पीने वाले …।

डाहीबाई : और फिर हमारे बहू के भाई बहुत चालाक हैं। आज दो बरस की बीमारी में हम सब खड़े-खड़े सूख गये, तब भी तुमने दवा-दारू का ध्यान नहीं किया, इसलिये बीमारी बढ़ गयी।

सूरज : ध्यान इससे ज्यादा क्या किया जायेगा ? बाकी दवा-दारू तो जैसे होती है, वैसे ही होगी।

डाहीबाई : हं, हं, कहने वाली ने कहा कि यह कोई पीने की चीज़ थोड़े ही है कि बड़े कलश भर कर पी जाये ?

सूरज : और बहू की सेवा क्या कुछ कम की होगी ?

डाहीबाई : **(संतोषपूर्वक)** ये उन्हें मालूम है। ये तो हमें बदनाम करना चाहते हैं। दूसरा होता तो कभी का पीहर भेज देता। वो तो हमने अपने घर रखा, यह उसका उपकार है।

सूरज : **(बात समाप्त करते हुए)** भाभीजी, जो करता है उसी को सब कहते हैं।

(दरवाजे के बाहर खड़ी मोटर का भोंपू बजता है)

डाहीबाई : **(स्वाभाविक भारी आवाज में)** अरे बच्चो, चलो, उतरो मोटर में से। **(सूरज से)** अपनी गली के लड़के भी कितने शैतान हैं ? जब से मोटर आयी है तभी से कुछ-न-कुछ कारगुज़ारी कर रहे हैं।

सूरज : **(डाहीबाई की बातों में रुचि न लेते हुए)** तो भाभीजी, बहू कुछ बोलती-चालती भी है या अभी वैसी ही है ?

डाहीबाई : पत्थर की तरह निढाल पड़ी है।

सूरज : अ-र-र ! शादी के दिन से ही ठीक नहीं रही। मर्ज़ भी एक नये ही प्रकार का था—हिस्टीरिया ! —हमें तो कहना भी नहीं आता।

सूरज : कैसे आयेगा ? कभी किसी को हुआ हो या देखा हो तब ना ? उसके भी करम फूटे थे जो यह रोग लगा···।

सूरज : ब···ब···स, करम की ही बात है। नहीं तो इतनी छोटी उमर में कहीं ऐसा रोग होता है ?

डाहीबाई : पर डाक्टर इसे कहां समझते हैं ? वे तो कहते हैं कि अकेले पड़े रहने से ही यह रोग होता है। और ऊपर से कहते हैं कि इसे पति के साथ रखने से ही ये रोग छूटेगा, वरना नहीं। सारी दुनिया में तूने कभी ऐसा सुना है ?

सूरज : अकेला तो बहुत लोगों को रहना पड़ता है। और फिर लड़का परदेस में कमाता हो तो बहू अकेली नहीं रहेगी तो क्या दुकेली रहेगी ? **(अनायास ही सहज भाव से हंसती है)**

डाहीबाई : देख तो सही। और फिर मलाक कौन-सा पास है कि चिट्ठी लिखी और वो आ गया ? उसको गये अभी तीन बरस तो पूरे हुए नहीं···पता है, एक चक्कर में कितना किराया लगता है ?

(थोड़ी देर तक कोई नहीं बोलता। दायें हाथ के कमरे में से धीरी चौखट के बाहर आती है)

धीरी : मां !

डाहीबाई : क्या लाली ? भाभी अब कैसी है ?

धीरी : **(निरुत्साहित होकर)** वैसी की वैसी है। **(ऊबकर)** थैली कहां रखी है ?

डाहीबाई : संदूक के ऊपर।

धीरी : अच्छा **(जाती है)**

डाहीबाई : मैं आऊं ?

धीरी : **(कमरे के अंदर से ही)** नहीं, डाक्टर ने अंदर आने के लिये मना किया है···यहां किसी का काम नहीं।

डाहीबाई : भगवान ! भगवान !

सूरज : बेचारे बाबू भाई के नसीब फूट गये।

(माथे पर उंगली रखती है)

डाहीबाई : (थोड़ी देर चुप रहकर, अचानक कुछ सूझा हो, इस प्रकार) इसमें कौन से नसीब फूट गये ? पुरुष को तो हमेशा पगड़ी शुभ है। बाबू के लिये तो एक क्या इक्कीस लड़कियों के बाप इंतजार में बैठे हैं।

(सूरज उसे गर्व से देखती रहती है)

सूरज : (आंखें नचाती हुई) अच्छा ?

डाहीबाई : (गंभीर मुंह बनाकर) और नहीं तो क्या ? ऐसा कुंवर कंहैया जैसा होशियार और फिर मलाक में कमाता-धमाता लड़का ऐसे-वैसे थोड़े ही मिलता है ? और ऊपर से अपने दीवान का पुराना मिट्टी का घर··· कितनी पीढ़ियों से दीवानी करते आये हैं ? व्यापार तो अब हुआ है । इससे पहले तो कचहरी में ठाकुर साहब के पास अपनी कुर्सी होती···।

सूरज : (डाहीबाई का साथ देते हुए) ···और फिर इन दिनों ऐसा ऊंचा मकान पूरे जोधपुर में होय तो बताओ। गोदड़वाला का दरबारगढ़ भी इसके आगे पानी भरे।

(डाहीबाई संतोषसूचक सम्मति प्रदर्शित करती है । इसलिए सूरज अपनी बातों को बढ़ा-चढ़ाकर बताती है)

भादों के अंत में होती बारिश में अपने कमरे का छप्पर दीखता है।

(स्कूल से गटु रोता-रोता आता है। उसके हाथ में स्लेट के दो टुकड़े तथा लकड़ी का चौखटा है)

डाहीबाई : (गटु को रोता देखकर) क्यों बेटा ? क्या हुआ ? किसने मारा ? (उत्तर नहीं मिलता) मास्टरजी ने डांटा ? (स्लेट की तरफ देखते हुए) ···यह क्या ? ? स्लेट कैसे टूट गयी···?

गटु : (दोनों हाथों से आंखें मलता हुआ हिचकी के बीच में) रास्ते में गाय के झुंड ने··· हं···हं आ रहा था।

डाहीबाई : तो इसमें क्या हुआ ? देख, जल्दी बोल, मेरे बाप।

गटु : गा···आ आ···ए ने धक्का मारा··· आआ···हं···हं···।

डाहीबाई : (घबराकर प्यार से) अ-र-र ! मेरे बच्चे ! (गटु को गोद में बिठाती है) रांड गाय भी··· (लाड़ से) कहीं लगी तो नहीं मेरे बेटे को ?

गटु : (हिचकी लेता हुआ) उं···हुं···हं···हं···पर···गिर गया···इसलिए ···स्ले···एएट···टूट···।

डाहीबाई : ओह ओह ! **(सांत्वना देते हुए)** इसमें रोने की क्या बात है ? पागल ? दूसरी नयी स्लेट ले दूंगी। अच्छा ? ले, चुप हो जा।

गटु : मां… !

डाहीबाई : देख, मां सो गयी है ना, इसलिए अभी वहां नहीं जा सकता।

गटु : ना… मां कहां… ?

डाहीबाई : देख। फिर वही पागलपन ? कहा ना कि अभी मां सो रही है, इसलिए नहीं जा सकता। स्याना बेटा !

(गोद में बिठाकर सिर पर हाथ फेरती है)

गटु : मां अब जगेगी ही नहीं, हैं ?

(रोने लगता है, कमरे में से धीरी आकर डाहीबाई को संकेत से बुलाती है)

डाहीबाई : **(उठकर जाते हुए गटु को कहती है)** देख, अभी वापस आती हूं, हं ! **(सूरज को सुनाते हुए)** चाची के पास खेलना, अच्छा !

सूरज : **(गटु को फुसलाते हुए)** देख, तुझे नयी स्लेट लेनी है ना ? तो चुप हो जा, बेटा !

(गटु रोने लगता है। सूरज अपनी साड़ी के पल्ले से उसके आंसू पोंछती है)

गटु : मां… ?

सूरज : अभी आयेगी, अच्छा।

गटु : **(खड़ा होकर कमरे की ओर जबरदस्ती जाता है)** मां… …मां के पास…।

सूरज : **(गटु को पकड़े रखती है)**—देख बेटा, अंदर नहीं जाना है। मां सो रही है ना, इसलिए अंदर नहीं जा सकते।

(कमरे में जहां बिलकुल शांति थी वहां अब बातचीत सुनायी देती है। किसी के जूतों की आवाज भी सुनायी पड़ती है। थोड़ी देर पश्चात डाक्टर बाहर निकलता है तथा जूतों की आवाज करता हुआ ठिठककर जल्दी से कमरे की सीढ़ियां उतर जाता है। पीछे डाहीबाई रोती हुई बाहर आती है)

डाहीबाई : **(सूरज से)** अरी बहू, पिछवाड़े से पटेल की गोशाला से थोड़ा-सा गाय का गोबर तो लेती आ।

सूरज : **(सारा भेद जानती हुई तेजी से खड़ी हो जाती है। जाते-जाते)** एक मिनट में लायी।

(दरवाजे के बाहर खड़ी मोटर का दरवाजा भारी आवाज के साथ बंद होता है। तुरंत प्रोपेलर की घु-रू-रू-रू की आवाज आती है। कुछ क्षण पश्चात दूर होती हुई गाड़ी का भोंपू सुनायी देता है)

गटु : **(अकेला रह जाता है)** —मां··· मां··· मां···!

डाहीबाई : **(गटु को गोदी में लेती हुई)** —तेरे नसीब फूट गये भाई! **(थोड़ी देर बाद)** तेरे, और साथ में हमारे भी।

गटु : मां, बताओ ना, मां कब जगेगी?

डाहीबाई : अब वह नहीं जगेगी, भाई!

गटु : मां···आ··· मां···आ···।

(बाहर से एक किसान आता है। आकर कमरे की सीढ़ियों के आगे खड़ा हो जाता है)

डाहीबाई : क्यों भई? कैसे आया?

किसान : कुरजी सेठ हैं?

डाहीबाई : हां, क्या काम है?

किसान : पास वाले मयाचन सेठ बुला रहे हैं।

डाहीबाई : **(सानंदाश्चर्य से)** मयाचन सेठ? कैसे आये?

किसान : अपनी घोड़ी पर आये हैं।

डाहीबाई : हं, कहां ठहरे हैं?

किसान : अस्तबल में घोड़ी छोड़कर मुझसे कहा कि कुरजी सेठ को बुला लाओ।

(डाहीबाई की आंख न चाहते हुए भी एक क्षण के लिए चमक उठती है। परंतु वह तुरंत पूर्ववत् गंभीर बनकर कमरे में जाती है। कमरे में से कुछ खुसर-पुसर सुनायी देती है। थोड़ी देर बाद अंदर से कुरजी सेठ निकलता है। पीछे डाहीबाई है)

कुरजी सेठ : **(डाहीबाई से)** मैं थोड़ी-सी देर में लौट आता हूं।

(सीढ़ियां उतरता है। घोड़ी कान ऊंचे करके हिनहिनाती है। कुरजी सेठ देहरी के बाहर निकलता है। पीछे किसान भी जाता है, पर डाहीबाई उसे रोकती है)

डाहीबाई : सुन।

किसान : हं, क्या ?

(खड़ा रहता है)

डाहीबाई : मयाचन सेठ की घोड़ी के लिये ढेर से थोड़ी मेथी की घास ले जा।

(किसान ढेर में से थोड़ी-सी घास लेता है)

दोनों हाथ भरकर ले जा।

(किसान घास लेकर बाहर जाता है)

गटु : **(रोना जारी रखते हुए)** मां, अब नहीं जगेगी ?

डाहीबाई : **(संकोच के साथ)** नहीं **(बात बदलने की इच्छा से)** देख तुझे नयी स्लेट लेनी है ना ?

गटु : **(रोते-रोते ही)** हां।

डाहीबाई : **(खुश होकर उत्साह से)** हं, कितनी बड़ी लेगा ? बता तो ?

गटु : बहू ··· उउत बड़ी।

डाहीबाई : कितनी ? **(दो हाथों को फैलाकर)** इतनी ?

गटु : ना···।

डाहीबाई : **(अधिक हाथ फैलाकर)** तब फिर इतनी लेगा ?

गटु : ना···आ···।

डाहीबाई : **(अब और अधिक हाथ फैलाकर)** इतनी ?

गटु : **(सहज मटककर)** हां···।

डाहीबाई : ओह ओह ! इतनी बड़ी लेगा ? हं ?

गटु : हां··· हां···

डाहीबाई : **(अपने गाल से गटु को चिपकाकर)** मेरा बेटा !

(सूरज हाथ में गोबर लेकर प्रवेश करती है)

सूरज : **(डाहीबाई को)** भाभीजी, बहू के मरने की खबर आधे गांव में फैल गयी।

डाहीबाई : वह तो डाक्टर की मोटर से गयी ना···। और पीछे-पीछे तेरे जेठ नंगे सिर गये हैं तो खबर फैलेगी ही ?

सूरज : जेठजी गये हैं ?

डाहीबाई : हां।

सूरज : सबको मुर्दनी में आने के लिए कहने गये होंगे ?

डाहीबाई : हां। नारियल और रस्सी भी चाहिए और फिर अर्थी उठाने के लिये कुछ आदमियों के बिना काम थोड़े ही चलेगा।

सूरज : इसीलिये गये होंगे?

डाहीबाई : हां, और वो पास वाले मयाचन सेठ आये हैं, उसके पास भी होते आयेंगे···।

सूरज : (**अर्थसूचक लंबी तान से**) ठी···ई···क।

डाहीबाई : (**बात बदलने के लिये**) लो, अगर कुछ काम हो तो मैं अंदर आऊं?

सूरज : नहीं, नहीं, और फिर गटु चुप नहीं होगा, इसलिए तुम उसे लेकर यहीं बैठी रहो, मैं ज़मीन लीपकर घी का दीया जलाकर आती हूं।

(**सूरज अंदर जाती है**)

डाहीबाई : और···घी दीये का अलग निकालकर रखा है, वो बोट में से लेना अच्छा।

सूरज : (**कोठरी में से**) अच्छा···।

डाहीबाई : और रूई बत्ती की आले में रखी है···।

सूरज : (**कोठरी के अंदर से**) देख लूंगी···।

डाहीबाई : (**मुश्किल से चुप कराये हुए गटु को दूसरी बातों में उलझाये रखने के लिये**) गटु, तूने यह उंगली में क्या पहना है?

गटु : अंगूठी।

डाहीबाई : यह अंगूठी किसकी है?

गटु : मेरी।

डाहीबाई : अ···च्छा···।

गटु : हां।

डाहीबाई : मुझे देगा ना।

(**कोठरी में से धीरी आकर**)

धीरी : मां।

डाहीबाई : क्या बेटी?

धीरी : भाभी ने नाक-कान में कुछ पहना क्यों नहीं?

डाहीबाई : कान के एरिंग तो सुनार को साफ करने के लिये दिये हैं, नाक का मोती और हाथ की चूड़ियां मैंने आज सुबह ही निकाल ली थीं।

धीरी : (**संतोष से**) ठी ··· क। मेरे तो होश ही उड़ गये थे सोचा ये सब चीज़ें गयीं कहां ?

डाहीबाई : धीरी, इस गटु को ज़रा संभाल, तो मैं अंदर हो आऊं।

धीरी : नहीं, नहीं मां, यह हमसे नहीं संभलेगा। तुम्हीं संभालो।

डाहीबाई : कुछ काम हो तो आऊं !

धीरी : नहीं, नहीं, चाची तो है ही।

(**जाती है**)

गटु : मां, अम्मा कहां ··· ? (**ज़ोर से रोने लगता है**)

डाहीबाई : (**संक्षेप में बात समाप्त करते हुए**) अम्मा अभी आयेगी अच्छा।

(**विषयांतर करते हुए**) तुझे नयी स्लेट लेनी है न ?

(**कोठरी में से सूरज आती है**)

सूरज : (**शोक से गंभीर होते हुए मुंह पर टेढ़ी उंगली रखती है**) भाभीजी, बहू के सिर पर क्या उड़ायेंगे ?

डाहीबाई : (**थोड़ी देर विचार करने के बाद**) सुहागन के लिये तो कीमती बंदेज ही होता है ना ?

सूरज : (**अधिकारपूर्वक सलाह देते हुए**) हां, वही।

डाहीबाई : बहू के दो बंदेज पड़े हैं। एक शादी का और दूसरा नगरी का बंदेज[1]। दोनों ही कोरे पड़े हैं। बस एक बार पहने थे। इसके बाद तो भगवान ने अच्छा ही कहां रहने दिया है ? शानदार बंदेज[2] की तो पूरी तरह तह भी नहीं खुली ···।

सूरज : और ज़री की भारी साड़ी है या नहीं ?

डाहीबाई : हं ··· तीन सौ रुपये की रुपहली साड़ी है। इतनी भारी है कि अब भी पहनी नहीं जा सकती।

सूरज : (**स्वाभाविक रूप से**) तो वही ओढ़ा दें ?

डाहीबाई : (**चौंककर**) साड़ी ?

सूरज : (**डाहीबाई का प्रश्न न समझते हुए पूर्ववत् सहज भाव से**) हां, साड़ी। अपने खानदान की परंपरा के अनुसार सुहागन को जो अच्छा लगता है वही ओढ़ाया जाना चाहिए। बेचारी ने ऐसे शाही घर में क्या भोगा ?

---

[1] पहली बार गर्भवती होने पर पहनने वाले कीमती कपड़े।

[2] विवाह का जोड़ा।

डाहीबाई : (**धर्मसंकट अनुभव करती हुई अंत में**) पर, साड़ी तो दहेज की है।

सूरज : अ··· च्छा ?

डाहीबाई : ऐसी चीज़ों की तो हजार बार ज़रूरत पड़ती है। कल यदि अवसर आये तो दहेज फिर नहीं रखना पड़ेगा ?

सूरज : अरे, हां, यह तो मुझे याद ही नहीं रहा।

डाहीबाई : और ऐसी महंगी चीज़ बार-बार नयी थोड़े ही ली जाती है।

सूरज : (**सहमत होते हुए**) नहीं, भई··· नहीं।

डाहीबाई : (**खुश होकर**) अब समझी··· और घर में पड़ी क्या काटती है ? कल बाबू की शादी में दें तो नयी बहू तीज-त्यौहार पर पहने न ?

सूरज : हां, यह बात सोलह आने सच है।

डाहीबाई : (**सहमति मिलने पर प्रोत्साहित होकर**) और बहुत पहनने से अगर तार खिंच जायें और फीकी पड़ जाये तो भी बिलकुल बेकार थोड़े ही होगा ? गटु बड़ा होगा तो इसका साफा बांधेगा।

सूरज : तो फिर बढ़िया बंदेज ही ओढ़ायेंगे न ?

डाहीबाई : हां, पर शादी वाली नहीं। उसकी तो कल ही ज़रूरत पड़ेगी। दूसरी ही लेना।

(**सूरज अंदर आती है**)

गटु : मां···आ··· (**ज़ोर से रोता है**)

डाहीबाई : अभी आती है, बेटा।

गटु : मां···आ···मां···आ···।

डाहीबाई : (**फुसलाकर चुप करती हुई**) देख, वो···आयी !

(**देहरी की तरफ देखते हुए आवाज़ देती है**) ओ···गटु की मां (**उत्तर मिला तो इस प्रकार**) ओ···यहां आ। गटु राह देख रहा है (**गटु से**) अभी आयेगी, अच्छा।

(**देहरी से कुरजी सेठ प्रवेश करते हैं। उन्होंने सिर पर सफेद साफा लपेटा हुआ है। एक हाथ में नारियल की रस्सी और नारियल है। दूसरे हाथ से कंधे पर मिठाई और गट्ठर संभाले हुए हैं**)

डाहीबाई : बिरादरी में सबको मुर्दनी में आने के लिए कह आये ?

कुरजी सेठ : नाई को भेजा है कहने के लिये।

डाहीबाई : ठीक··· मयाचन सेठ की बाद में··· ।

कुरजी सेठ : **(बीच में)** घर से निकलते ही पनिहारिन का शगुन हुआ···

डाहीबाई : **(आनंद से)** वाह··· वाह !

कुरजी सेठ : मयाचन सेठ कह रहे थे कि पक्का करके जाओ।

डाहीबाई : **(अधीरता से)** तो तुमने क्या कहा ?

कुरजी सेठ : जब मैंने दो दिन ठहरने की बात कही तो उसने कहा कि गुड़ की डली तो खाते ही जाओ। इसके बिना यहां से नहीं उठने दूंगा, टीका अपनी मर्जी के अनुसार करना।

डाहीबाई : फिर तुम क्या कह आये ?

कुरजी सेठ : गुड़ की डली तो मैंने खा ही ली है। टीका मुर्दनी के बाद लेंगे।

गटु : मां **(रोने लगता है)**

डाहीबाई : **(फुसलाते हुए)** देख, गटु, तुझे नयी स्लेट लेनी है ना।

(कोठरी में जाते हुए कुरजी सेठ से कहती है)

ए···गटु के लिए नयी स्लेट ले आना।

कुरजी सेठ : मुर्दनी के बाद ले आयेंगे, अच्छा बेटा। चुप हो जा, नयी ले आऊंगा।

(परदा)

पीहर का पड़ोसी

—पुष्कर चंदरवाकर

पात्र

रूपाली

शूरसिंह

दीपसिंह

रायचंद

पयादा

(घर का एक कोना। कोने में ईंट रखकर चूल्हा बनाया गया है। चूल्हे के सामने वाले भाग में अधजले उपलों की राख का ढेर और ढेर पर कूड़े की छोटे ढक्कन वाली टोकरी। पास में भात बनाने का बर्तन, कूड़े का तसला, लकड़ी की कड़छी, लोहे का चिमटा, पानी का बर्तन, और टूटी कड़ाही के बिखरे हुए टुकड़े। चूल्हे पर हांड़ी चढ़ी हुई है। चूल्हे के सामने वाले भाग में उपले जल रहे हैं।

रूपाली का प्रवेश। उम्र बीस और तीस के बीच। चेहरा न गोल न लंबा। गेहुआं रंग, आंखों में यौवन की चमक, सिर और पीठ पर ओढ़नी, पल्ले का एक छोर आगे खोंसा हुआ और दूसरा सिर पर। राजस्थानी छाप का घाघरा, अंधेरी रात में जिस तरह तारे चमकते हैं, उसी तरह सूर्य की किरणों में घाघरे की अबरक चमक रही है। पूरी आस्तीन की चोली पहने हुए। एक हाथ में कीकर की चूड़ी, दूसरा हाथ खाली है। पांव में कड़े नहीं हैं। चूल्हे के सामने वाले भाग के पास रूपाली झुककर कड़छी लेती है और भात को देखती है।)

रूपाली : (भात देखते हुए) रायचंद ने कैसे चावल दिये हैं ? कितना उबाला है पर अब भी चावल की कनकी कच्ची है।

(इंधन की कोठरी में से उपले निकालकर चूल्हे में लगाती है। इतने में लड़का शूरसिंह प्रवेश करता है। शरीर पर एकमात्र मैला कुर्ता और हाथ में गन्ने की पूली है। एक पैर में चांदी के कड़े तथा बायें हाथ में काला डोरा बंधा हुआ है। गले में हंसली है)

शूरसिंह : (आते ही) मां !

रूपाली : अब क्या हुआ ?

शूरसिंह : ये लो हमें नहीं खाने तुम्हारे गन्ने।

रूपाली : तुझसे किसने कहा था कि इतने सारे गन्ने उठा लाना।

शूरसिंह : (गन्ने फेंकता हुआ) नहीं खाना, लो। **(एकाएक)** गन्ने क्या खाऊं ? सड़े हुए हैं।

रूपाली : (हंसकर) शैतान।

शूरसिंह : मां ··· भूख लगी है, खाना दो।

रूपाली : गन्ना खा, अगर नहीं खाने थे तो पस्सो भर ज्वार बनिये की दुकान पर क्यों डाल आया ?

शूरसिंह : तुमने ही तो दिया था।

रूपाली : तो खाने को भी मैं ही कह रही हूं ना ?

शूरसिंह : मुझे अच्छे नहीं लगते। मुंह में छाले पड़ जाते हैं।

रूपाली : **(गन्ने को देखते हुए)** अब क्यों खायेगा ? ये कह ना कि पेट भर खा लिया है। पूछड़ी क्यों भायेगी ?

शूरसिंह : खाना दे। **(भूमि पर बैठकर पैर रगड़ता है)**

रूपाली : पूरा यमदूत लगता है।

शूरसिंह : पर मां, बड़ी भूख लगी है।

रूपाली : गुड़ दूं ? चावलों में तो अभी देर है।

शूरसिंह : रोज़-रोज़ चावल। मुझे यह खाना अच्छा नहीं लगता। नहीं खाता, जाओ।

रूपाली : **(गुस्से में)** नहीं खाना तो चलता बन। जैसे अपनी हकूमत समझ रखी है। अपने बाप से पूछ चावल कैसे लगते हैं ? वो कलमुंहा रायचंद। खलिहान में से एक-एक दाना साफ करके ले गया। अपने भाग्य में तो चावल ही रह गये।

शूरसिंह : **(ज़ोर से रोते हुए)** नहीं, मैं यह नहीं खाऊंगा ··· नहीं खाऊंगा ···।

रूपाली : तेरे तो अच्छे भी खायेंगे।

शूरसिंह : **(रोना कम करके)** साग किसकी है ?

रूपाली : साग ? पहले यह तो देख कि घर में कितना भरा है ?

शूरसिंह : तो मैं किससे खाऊं ··· ?

रूपाली : मघा काका के घर की छाछ से।

शूरसिंह : उस मोर के आंसू जैसी छाछ के साथ तो एक गस्सा भी गले से नहीं उतरता।

रूपाली : सांझ तक सवा मन धूल बाप के पेट में पहुंच जाती है और इस कुंवर को राजभोग चाहिए।

(पुनः चावल देखती है। शूरसिंह का रोना चालू है)

शूरसिंह : ऊं ··· ऊं ··· ऊं ··· बहुत भूख लगी है। खाना ···।

रूपाली : ला, तस्तरी ला ··· ठंडा कर दूं।

शूरसिंह : लेकिन छाछ से नहीं खाऊंगा।

रूपाली : तो इस चूल्हे से खायेगा ?

शूर्रसिह : ऊं···ऊं···छाछ से नहीं।

(**खड़ा होकर तश्तरी लाता है, लेकिन पीछे छिपाते-छिपाते धीरे-से आता है**)

रूपाली : ला ना।

शूर्रसिह : दूध दे दो।

रूपाली : तेरे लिए अब भूरी भैंस लेने जाऊंगी।

शूर्रसिह : तो···तो··अपनी अच्छी भैंस क्यों बेच दी ?

रूपाली : अपने बाप से पूछ। मैंने तो बहुत मना किया, लेकिन अपनी नाक ऊंची रखने के लिए बेच दी।

शूर्रसिह : नहीं, नहीं, मैं तो दूध···।

रूपाली : इतना बड़ा आठ बरस का बैल हो गया, अब भी नहीं समझता ?

(**शूर्रसिह की कलाई पकड़कर**) ला तश्तरी।

शूर्रसिह : (**तश्तरी फेंक देता है**) नहीं खाता···नहीं खाता···न···ही ही ही।

(**बाहर जाने के लिए मुड़ता है**)

रूपाली : ले, गुड़ दूं ?

शूर्रसिह : रोटी है ?

रूपाली : बासी भी नहीं है, भैय्या ! दोपहर···।

शूर्रसिह : ना। (**पीछे-पीछे खिसकता है**)

रूपाली : (**आंखों से आंसू गिरते हैं**) यह रायचंद किस जन्म का बैरी है। हमारा भी हमें सुख से नहीं खाने देता। इस बेचारे बच्चे को क्या पता ? मुझसे नहीं मांगे, तो किससे मांगेगा ···हे भगवान। हम पर नहीं तो इस फूल पर तो दया करो।

(**दीपसिंह आता है। रूपाली पल्ले के छोर से आंसू पोंछती है। दीपसिंह नौजवान है। सिर पर साफा। बिना बांह का अंगरखा। चार-पांच दिन की दाढ़ी है। धूल भरे नंगे पांव हैं और आंखों में विषाद है**)

रूपाली : तुम गांव में ही घूमते रहना।

दीपसिंह : अपने···बैल को कुछ···।

रूपाली : एक तो ठीक है ना ? दूसरे को किराये पर ले आओ। बारिश होने वाली है। आजकल में खेत जोत देते तो···

दीपसिंह : जोत तो दिया है।

रूपाली : तो अब ?

दीपसिंह : बीज ··· बीज ···।

रूपाली : बीज ? दोबारा जोत लो। एक-दो बार ज़्यादा जोतने से अच्छा मोल ··· घर के आगे यमदूत तो कम हो। सिर पर कितनों का कर्ज़ा है ?

दीपसिंह : वो तो है ही ···।

रूपाली : (**नम्र होकर**) ना, ना, तब भी कितना ?

दीपसिंह : चार एक लोगों का।

रूपाली : पर इसमें रायचंद काका का ··· चुकता हो गया ना ?

दीपसिंह : चुकता तो हो जाना चाहिए। दो सौ लिए थे। उसका ब्याज। पिछले दो वर्षों से ब्याज भी नहीं दिया गया। वो भी साथ जोड़ा जायेगा ना ? तीन सौ ··· इतनी-सी रकम है ··· तो भी ··· ढाई सौ ··· पर पिछले साल फसल का दाना-दाना दे दिया था।

रूपाली : लेकिन अब यह एक नयी चिंता। अब बैल बीमार···लो, खाना परोसूं ?

दीपसिंह : सूरिया ने खा लिया।

रूपाली : (**हंसकर**) तुम्हारे कुंवर ने ? उसे दूध चाहिए। बाप हो, दुधारी गाय ला दो।

दीपसिंह : (**निःश्वास छोड़कर**) दुधारी गाय। दुधारी गाय। कुछ चैन पड़े तो ···।

(**रूपाली खड़ी होती है**)

रूपाली : लो ये चावल। रायचंद काका आदमी है या जानवर। बारिश में भीगा हुआ चावल दिया है। देखो ना। इन चावलों में से बदबू आ रही है। दलने बैठूंगी तो आटा ही आटा मिलेगा। कितनी मुसीबत है ? दाम पूरे दिये। और माल कूड़े में फेंकने लायक ···।

दीपसिंह : मेरी खाने की इच्छा नहीं है ···।

रूपाली : बैल के कारण न ? भगवान सब ठीक करेगा। खाने बैठे हो तो जितना भाये उतना खा लो।

दीपसिंह : (**खड़ा होकर**) कंगाली में आटा गीला।

रूपाली : तो इसमें इतना निराश होने की क्या बात है ? कल सुबह बैल अच्छा हो जायेगा। दो साल में सब बराबर। ज़रा बारिश तो होने दो।

दीर्पासह : पर दरवाज़े पर कौन चैन लेने देता है ? इस गर्मी में ··· आबरू गयी तो फिर जीना क्या ?

रूपाली : (**चौंककर**) आबरू ? किसी का स्याह सफेद किया है ? किसी की चार दीवारी फांदी है ? किसी को झांका-ताका है ? किसी को लूटा है ? किसी की बहन-बेटी भगायी है ? आबरू तो इन बातों से जाती है।

दीर्पासह : मेरे सिर ··· सिर पर (**कांप जाता है**)

रूपाली : सिर पर सुंदर चिड़िया बैठी है। यह तो अच्छा शगुन है। चुपचाप, जितना अच्छा लगे उतना खा लो।

दीर्पासह : नोटिस ··· रायचंद काका ने दिया है ··· सांझ या सवेरे यह घर ··· ज़ब्त।

रूपाली : ज़ब्त ? (**स्वस्थ होकर**) रायचंद काका को हमने कब खाली हाथ टरकाया है ? नींद से उठकर गेहूं दिये हैं और फिर भी सिर पर यह नोटिस ?

दीर्पासह : तब भी ··· तब भी।

रूपाली : रायचंद को मौत क्यों नहीं आती ?

दीर्पासह : सुन, चोरा की बैठक में बैठा था ··· और वहां मैंने हिसाब मांगा।

रूपाली : ठीक बात है। अपना बाकी निकलता हो तो वक्त-बेवक्त काम तो आये ना ? तो ··· फिर ··· ?

दीर्पासह : ऐसा नहीं। उसने कहा कि बहुत साहूकार बनता है तो प्यारे 75 रु. निकाल दो ना ?

रूपाली : (**चौंककर**) 75 ? काहे के ?

दीर्पासह : मैंने भी यही पूछा—काहे के ?

रूपाली : तो ··· फिर ··· ?

दीर्पासह : उसके साथ मेरा झगड़ा हो गया। थाने में जाकर दावा कर दिया। ज़ब्त रूपा—ज़ब्त। नोटिस। यह घर ··· यह बर्तन ··· ये चीजें पुरखों का घर ··· बापू का पलंग ···।

रूपाली : ये सब अब रूपा के लिये ही रह गया है ?

दीपसिंह : ना···ना···रूपा। **नोटिस** लाने **वाला** जाति का तो **ब्राह्मण** है पर **कर्म से कसाई**···।

रूपाली : यह तो पहले से **ही सोची** हुई **चाल** है। जो होगा, देखा जायेगा। **उठो चावल** में छाछ डाल दूं। **चख के** देखो। खट्टा है या मीठा···?

(इतने में बाहर से आवाज आती है)

आवाज : दीपसिंह, दीपसिंह। **(कोई उत्तर नहीं मिलता)** साले **नीच** जात **के** हैं ना। घर में होगा पर बोलेगा क्यों? अरे, **क्या सब** श्मशान चले गये हैं?

रूपाली : सोच-समझकर बोलो काकाजी।

आवाज : ओ तेरे की। है ना दिमाग खराब। कर्ज़ा देकर दुश्मनी मोल ले ली। लेते समय कुत्ते और देते समय शेर हो जाते हैं। दुनिया का इंसाफ **देखो**।

रूपाली : आओ।

(सेठ रायचंद प्रवेश करता है। वृद्धावस्था में भी गठीला शरीर है। सिर, मूंछ और दाढ़ी के बाल सफेद हो गये हैं। चेहरे पर चार-पांच दिन से हजामत नहीं बनायी है। शरीर पर बढ़िया कपड़े का चौड़ी बांह वाला अंगरखा है, जो घुटने तक लटका हुआ है। सिर पर मारवाड़ी पगड़ी है। कमर में बिना किनारी का हल्का पीले रंग का दुपट्टा है। पांव में देशी चमड़े का जूता और बायें हाथ में कपड़े में लपेटा हुआ बहीखाता है। आवाज देता हुआ रायचंद प्रवेश करता है)

रायचंद : साले मक्कार! **(रूपाली घूंघट निकालकर खड़ी हो जाती है)**

रूपाली : काकाजी, जबान संभालकर बात करो।

रायचंद : तो इसमें कौन-सी गाली दे दी? अरे, बोल तुझे हिसाब करना है ना? **(घर के बीच में ही रायचंद काका खड़ा रहता है)** इधर तो आ, तेरा **क्या** बिगाड़ा है, जो सबके बीच हमारी बेइज्जती करता फिरता है। तुझे ब्याज पर पैसा निकालकर दिया है तो क्या गुनाह कर दिया? मालूम है गांव में ड्योढ़ा ब्याज मिल रहा था?

दीपसिंह : (आश्चर्य से) ड्योढ़ा ब्याज?

रायचंद : तू ही अकेला दे रहा है क्या? अच्छे-अच्छे आदमियों ने दिया है। बही खोलकर देख। यह है पटेल, गांव की नाक, इसका नाम भी इस बही में है। **(सेठ रायचंद की दृष्टि घर की चीज़ों पर पड़ती है)** हं तुम? **तुमसे** तो गड़रिया अच्छा है, गड़रिया। चैन से सोता तो है। और इसी ब्याज में दूध, घी, मेवा भी

मिलता है। तुम्हारी तो नीयत खराब है । हराम का खाना और मस्जिद का सोना…।

रूपाली : (**बीच में**) काकाजी। देवता का मातम पुजारी से? हां, फिर मत कहना कि बुलाया नहीं। औरत के मुंह के बोल…?

रायचंद : देख दीपा, हम तो तुम्हें देकर दुश्मन हो गये। ले मुझे क्या? मुझे तो अपने रुपयों से मतलब है। लाओ, मैं चलूं।

दीपसिंह : काका, दाना-दाना तुम्हें दे दिया। अब…?

रायचंद : ब्याज।

दीपसिंह : ब्याज नहीं, अब तो इस शरीर में हाड़-चाम…।

रायचंद : चार के बीच में कहा था ना? अब चुकता करो।

दीपसिंह : इस वक्त तो कुछ…कुछ…नहीं है।

रायचंद : नहीं हो तो कुछ गिरवी रख। मुझ तो मेरा पैसा…।

(**रूपाली की ओर तिरछी दृष्टि से देखता हुआ। यह देखकर रूपाली सेठ रायचंद पर थाली फेंककर मारती है**)

रूपाली : कमीने! कल शाम तक कैसे भी तुझे तेरे पैसे दे देंगे, पर तू यहां से टल।

रायचंद : वाह रे! इससे अच्छा और क्या चाहिए? रानी को कानी कौन कहेगा? देखो इसका मिजाज। इसमें मरे हम? मकान ज़ब्त ही करना पड़ेगा। इसके बिना सीधा नहीं होगा। वो नोटिस वाला आयेगा तो अकल ठिकाने आ जायेगी। इसमें क्या देर लगती है? कल नोटिस मिल गया है। देखता हूं तेरी रानी का मिजाज कब तक गर्म रहता है?

(**जाता है**)

रूपाली : अब कितना देना है?

दीपसिंह : चार बीसी में…पांच कम।

रूपाली : काले चोर से लाओ, लेकिन इस राक्षस को मेरे घर में नहीं आना चाहिए। चमार की सूरत वाला यह बनिया दुबारा इधर न आये। ज़रा इसकी नज़र तो देखो। (**दीपसिंह ढीला पड़ जाता है**) यह लो, उठो, सब ठीक हो जायेगा। बैल को देख आओ। नोटिस आयेगा तब देखा जायेगा। हाथ-पांव जोड़ कर नोटिस लाने वाले को मना लेंगे। कुछ पैसे मुंह में डाल देंगे।

दीपसिंह : मुझे तो रोना आता है।

रूपाली : एक बच्चे के बाप होकर बच्चों जैसी बात करते हो? वाह! उठो।

दीपसिंह : नहीं, ऐसा लगता है।

रूपाली : एक नोटिस ही है न ? गांव में तुम्हारे ही घर पहले-पहल नोटिस नहीं आ रहा ? किसान के यह दिन कैसे आये ? धरती सूख गयी, जितना सोचा था उतना अनाज नहीं हुआ। तभी यह दिन आया ना। इसमें गांव क्या कहेगा ? हमने रात-दिन देखे बिना कठिन मेहनत की है। अनाज हो या न हो यह तो नसीब की बात है। कर्ज नहीं चुकाया तो·· चलो··· जाओ अब।

(रूपाली दीपसिंह को खड़ा करती है)

रायचंद : **(प्रवेश करते हुए)** देखा साहब। नीयत ही खराब हो तो अनाज कहां से आयेगा ? राख ही होगी और क्या ? आप जरा देर से आते तो यह साहूकार तो सातवें पाताल उतर गया होता। बाद में आप इसे ढूंढ़ते रहते।

(रूपाली घबरा जाती है। दीपसिंह के पास ही बैठ जाती है। उसका चेहरा निस्तेज पड़ जाता है। रायचंद घर के अंदर आकर खड़ा हो जाता है)

रायचंद : अरे साहब, अंदर आइये, अंदर आइये। घर में ढंग का बिछावन भी नहीं है। चाय-वाय तो गयी, पर खाट तो डाल दे। कैसा आदमी है ? बस रोने की कसर है। साहब, अंदर आइये, अंदर।

(रायचंद स्वयं ही बाहर से खाट ले आता है। नोटिस लाने वाला रौब से अंदर आता है। सिर पर काले बालों वाली ऊंची टोपी, खाकी कोट, हाथ में चमड़ा चढ़ी मूठ की बेंत, मुंह में सिगरेट। पीछे चपरासी के हाथ में फाइल है, पयादा खाट पर बैठ जाता है)

रायचंद : साहब, हम तो देकर दुश्मन बन गये। अब इसके साथ कैसा नाता ? घर जैसे ही थे, पर देकर दुश्मन···।

पयादा : **(दीपसिंह की ओर देखकर)** कितने बीघे ज़मीन है ?

दीपसिंह : **(सोचकर)** कुल मिलाकर पंद्रह बीघे। पांच बीघे का टुकड़ा सुरधन का, नौ बीघा बेलावाली।

पयादा : सच बोल। ये बही देख। इसमें तेरा सब···।

दीपसिंह : अट्ठारह बीघे कसमावली, और आठ बीघे मंदिरवाली।

पयादा : कितना पैसा लिया है ?

रायचंद : अरे साहब, मेरी बात के बीच में इसे क्यों घसीटते हो ? कर्ज़ा सब के सिर पर होता है। औरत का राज है। कर्ज़ा तो होगा ही। एक रानी विक्टोरिया का राज था और दूसरी रानी का राज यहीं है।

पयादा : **(रौब से)** सेठ। **(सेठ समझ जाता है)** अच्छा तुझे किसका, कितना देना है ?

दीपसिंह : साहब, होगा हज़ार एक।

पयादा : अपने कर्ज़ भी नहीं मालूम ? अजीब आदमी है।

रायचंद : घर में औरत का राज है। पूछो इससे।

पयादा : इसमें इस सेठ का कितना है ?

दीपसिंह : इससे ही पूछो ना। मेरे हिसाब से तो एक पाई भी नहीं।

रूपाली : **(बीच में ही)** एक पाई भी नहीं। बच्चों का पेट काटकर उसकी पाई-पाई चुका दी है।

पयादा : लेकिन इसने तो 75 रुपये का दावा किया है। सच्चा कौन है ? सेठ या तुम ?

रायचंद : साहब, नीयत का खोटा है। देखिये यह मेरी बही। सब लिखा है। यह तो साहब, देकर दुश्मनी मोल ली है…।

पयादा : कुछ नहीं देना तो यह कर्ज़ा कहां से आया ? **(दीपसिंह मौन रहता है)** बोल, बोल ?

रायचंद : साहब, बोलने लायक हो तो बोले भी। इसमें है ही क्या बोलने के लिए ?

रूपाली : **(बीच में आकर)** क्यों बोलने में क्या है ? कुछ देना नहीं है। सब चुकता कर चुके हैं।

रायचंद : ओ तेरे की। है ना मर्दमार। **(ज़ोर से)** साहब, यह रही बही। न मुझको शरम न इसको।

रूपाली : साहब पूछो इससे। किसके लिए लिया था ?

रायचंद : अब चखचख क्या करती है ? देख अपने आदमी का अंगूठा। ऐसे ही थाने गया होगा ? साहब, देकर दुश्मनी मोल…।

रूपाली : पर क्यों लिया था यह बताओ ना ?

रायचंद : यह मुझे नहीं पता। पर खनखनाता हुआ नकद गिनकर दिया है।

रूपाली : तुमसे नकद कब लिया था ?

रायचंद : वाह, वाह। उल्टा चोर कोतवाल को डांटे। इसमें तो सभी का फायदा है। अबे सादुला। कहां मर गया ? साहब के लिए चाय-पानी तो ला। दूध लइयो। साहब को शक्कर और इलायची दे। दस-एक सेर बढ़िया पेड़े बांध दे। साहब को भी याद रहे। (**पयादे की ओर देखकर**) अपनी चाची को कह दे कि साहब यहीं रोटी खायेंगे। अभी हुकमनामा बजाना…।

पयादा : तो कोर्ट में क्यों कबूल किया था ? मैं तो मुनसिफ साहब का ताबेदार हूं बोल नकद देगा या नहीं ?

रायचंद : हां, साहब नकद ही।

दीपसिंह : साहब, मैंने कोर्ट में ही कह दिया था कि इस गर्मी में हमारे घर नकद कहां से आयेगा ?

रायचंद : साहब, हम ये सब नहीं जानते। हमें तो अपना हुकमनामा बजाना है। मैंने तो देकर दुश्मन बनाया, साहब। हम महाजनों के दिल में कुछ दया होती है। नहीं तो अभी पैसा वसूल कर लूं।

पयादा : अरे चपरासी। चपरासी। शादुला।

रायचंद : क्यों साहब ? वह तो ज़रा दूध पेड़ा लेने घर गया है। खास बंबई तक इस गांव के पेड़े जाते हैं।

पयादा : (**रूपाली और दीपसिंह की ओर मुंह करके**) एक ओर खड़े हो जाओ, सेठ, चपरासी को…।

रायचंद : अरे साहब मैं हूं न। बोलिये। बोलिये न।

पयादा : मैं बताऊं, इसे अलग कर दो। और इसको नीलाम…।

(दीपसिंह पर मानो वज्रपात हो जाता है। धड़ाम से नीचे गिर जाता है। रूपाली के चेहरे पर निराशा के बादल छा जाते हैं)

रायचंद : साहब, इसमें अलग करने को है ही क्या ? इस संदूक में कुछ नहीं बोलेगा और इन फूटे बर्तनों पर कौड़ी भी नहीं मिलेगी। एक किसान के घर के पूरे समान का भी क्या मिल सकता है ?

(चपरासी आता है)

पयादा : चपरासी। पंचों को बुलाओ।

रायचंद : अरे साहब, इसमें पंचों का क्या काम ? चपरासी, खुशाल ठाकुर की

दुकान से बादाम पिस्ता लाकर पेड़ों में डाल दो। दूध में केसर डालकर लाना।

पयादा : (**रूपाली से**) कोई जेवर है। (**रूपाली घुंघट निकाले खड़ी है**)

रायचंद : यह बात मत पूछो, साहब। सोने की खान है इसके घर में। सोने की नहीं तो चांदी की तो होगी ही। साहब, इसकी बात क्या इसके घर का चप्पा-चप्पा देख लो। यह इस घर की रानी है। जेवर तो पकते चावलों में डाल दे ऐसी ··· साहब, हांडी फोड़कर इसमें देखो। (**पयादा चुप रहता है। सेठ रायचंद चावल की हांडी के पास जाता है और उसको पटकता है**) साहब ये हाथ काले करने पड़ेंगे। साहब, देकर दुश्मन ···।

(**शूरसिंह आता है**)

शूरसिंह : मां ··· मां ··· खाना ···।

(**रायचंद की दृष्टि शूरसिंह के शरीर पर पड़ती है**)

रायचंद : अरे साहब। देखो यह आस्तीन का सांप है। देखो, देखो, देखो। लड़के के गले में हंसली और पैर में चांदी के कड़े पहनाकर बाहर भेज दिया। है ना चालाकी? (**पयादा शूरसिंह की ओर देखता रहता है**) साहब, उतार कर देखो।

पयादा : (**रूपाली की ओर घूमकर**) ये निकालना पड़ेगा।

(**रूपाली स्तब्ध खड़ी रह जाती है**)

रायचंद : अरे साहब, नर्मी से सीधा नहीं होगा। इसके साथ तो सख्ती बरतनी होगी। तभी सीधा ··· (**शूरसिंह को रायचंद हाथ से पकड़ता है**)

पयादा : सेठ!

(**रायचंद पयादे की तरफ देखता रहता है**)

रायचंद : साहब, आपके पास लाता हूं। साहब, हम ··· दुश्मन ··· अब तो पूरे दुश्मन हो गये।

(**शूरसिंह के गले की हंसली उतारना चाहता है**)

(**शूरसिंह चीख मारकर छूटने की कोशिश करता है**)

रायचंद : बहुत ताकत है?

शूरसिंह : ओ ओ ··· रे ··· मां।

रायचंद : दुश्मन पक्का दुश्मन, क्यों साहब?

शूरसिंह : (**दीपसिंह की ओर**) बापू ··· ऊ ··· ऊ ··· (**आवाज फट जाती है**)

रायचंद : ये एक हाथ से नहीं निकल सकता। ज़ोर लगाना पड़ेगा। (**शूर्रसिह को दोनों पैरों के बीच दबाता है**) यही दुश्मन, यही दुश्मन ···।

शूर्रसिह : ओ मां। मर गया ···ओ···।

रूपाली : (**पयादे की ओर**) साहब, लड़के को छुड़ाओ ना। (**दीपसिंह को झंझोड़ती है**) ऐसे क्यों पड़े हो ? उठो। इस काले चोर के पैसे ब्याज सहित दे दो। घरबार, बैल, ज़मीन, सब गिरवी रख दो, पर इस राक्षस की शक्ल मेरे आंगन में न दिखे। उठो। (**दीपसिंह उठता है**)

रायचंद : देखा साहब ?

पयादा : (**गंभीर होकर**) क्या ?

रायचंद : साहब, यह सब नाटक है, नाटक। ऐसे बहाने इन लोगों को बहुत आते हैं। साहब, मुझसे पूछो तो इस रानी के पास भी कुछ होना चाहिए। देखा लाज का कितना लंबा घूंघट निकाला है।

रूपाली : काकाजी, तुम्हें पैसे से काम है ना ? किसी की ज़मानत दिलवा देंगे। (**दीपसिंह की ओर**) जाओ, ज़मानती ले आओ।

(**दीपसिंह और रायचंद जाते हैं**)

पयादा : बहनजी ···।

(**रूपाली मुंह खोलकर सामने आती है। रूपाली का चेहरा देखकर पयादा चौंक उठता है। घबराये हरिण शावक की भांति शूर्रसिह धोती के पल्ले से अश्रुधारा पोंछ रहा है**)

रूपाली : साहब !

पयादा : बहन !

रूपाली : भैय्या, सारा घर लूटकर अब हमारी आबरू लूटना चाहता है यह बनिया। मेरे गले में विधवा का बंधन डालना चाहता है।

पयादा : तो फिर इसको थाने में जाकर साफ-साफ कहना चाहिए था। (**उसकी आंखों को देखकर चौंकता है**) बहन, तुम्हारा पीहर ···।

रूपाली : (**शरमाते हुए**) मेरा पीहर ? बरानी ···नागने बरानी।

पयादा : घोड़का के पास ही ···।

रूपाली : हां, हां, मेरे पिताजी उसके पास ही पढ़ाते थे।

पयादा : हां, तो वहां तुम ··· ?

रूपाली : पंद्रह बरस से गांव छोड़ दिया है।

पयादा : वहां तुम्हारे पड़ोस में कोई ब्राह्मण रहता था? (**रूपाली पयादे की तरफ देखती रहती है**) केशा मां ज़िंदा है? बहन, तुम उस ब्राह्मण के लड़के को पहचानती हो? सर्दियों में घर साग-भाजी दिया करती थी, याद है? बापू ज़िंदा है? बापू ने उस लड़के को कितना पैसा दिया था, तुम्हें मालूम है?

रूपाली : (**खुशी से**) रवि भाई!

(**आंखों से अनवरत आंसू बहते हैं**)

पयादा : (**गद्‌गद् होकर**) हां, वही तुम्हारा रवि भाई।

रूपा, बहन रूपा। तुम्हारी इन तेज आंखों से ही मैंने पहचान लिया था। तुम्हारी तबीयत…।

(**दीपसिंह प्रवेश करता है। जान-बूझकर खों-खों-खों खांसता हुआ रायचंद भी साथ आता है**)

रूपाली : (**घूंघट निकालकर**) क्यों? क्या कर आये?

रायचंद : साहब, अभी तक जो मुट्ठी बंद थी वह खुल गयी। नीयत खराब हो तो कौन जमानत देता है? साहब, हमें तो अपना काम करना है…। जेवर उतरवाओ। साहब, मेरा कर्ज़ा वसूल होना चाहिए। साहब, यह दस सेर पेड़े लेते जाना। और तो क्या दूं? यह हमारी तरफ से भेंट समझो।

रूपाली : बेईमानों के गांव से भगवान भी रूठ गये?

पयादा : (**रूपाली को सुनाते हुए**) सेठ। तुमको मेरा विश्वास है ना? इन लोगों की ज़मानत मैं देता हूं। चपरासी, चलो, उठो (**उठते हुए प्रेम से**) भांजे, छुपते क्यों हो? (**जेब से आठ आने निकालकर**) आओ, देखो, लो। (**शूरसिंह के हाथ में देता है**) चपरासी, चलो, हमें तो थाने जाना है। (**पयादा चला जाता है**)

रायचंद : (**घर की चीज़ों की ओर देखता हुआ**) रूप से रिश्ता होने में क्या देर लगती है?

(**परदा**)

ऐसे नहीं तो वैसे

—पन्नालाल पटेल

पात्र

जमना

रूखी

सास

भगा

कोदर

युवक तथा युवतियां

(जन्माष्टमी का दिवस है। आकाश में बादलों की चहल-कदमी। धरती पर मेले के लिए निकले युवकगण ठीक-ठाक मात्रा में हैं।

दो युवा किसान गांव के टीले पर चढ़ रहे हैं। दोनों का वेश—पिंडलियों को ढकती हुई मोटी धोती, छह बगल के बटन वाला अंगरखा और सिर पर एक जैसे साफे। उम्र भी एक-सी—बीस-बाईस के लगभग। आगे चलते हुए गेहुएं वर्ण वाले कोदर के पांव में नाल-जड़ा जूता है। थोड़ा श्याम वर्ण वाले भगा के पांव नंगे हैं।)

भगा : अरे कोदर, जन्माष्टमी के दिन तेरी बहू को लेने जा रहे है, यह कुछ ठीक नहीं है।

कोदर : (**हंसती हुई आंखों से पीछे देखता है**) क्यों ?

भगा : अबे और दिन आये होते तो (**पेट दिखाते हुए**) जरा पेट पूजा तो हो जाती।

कोदर : अरे क्या बात करता है ? और दिन तो मरने की फुरसत भी नहीं मिलती है। यह तो गनीमत है कि आज गोकुल अष्टमी में हल खोल दिये हैं, नहीं तो ले —किन तुझे अगर अपनी चमड़ी चिकनी करनी हो तो मैं जाते ही अपनी सास को कह दूंगा कि भगा खाना खायेगा। और तू कहता है तो (**खड़ा रह जाता है**) मैं भी खाने बैठ जाऊंगा और कंसार मलने के बाद ओ हो। अष्टमी का व्रत है, यह तो मैं भूल ही गया। तू कह तो बंदा वह मिला हुआ कंसार तेरी तरफ खिसकाकर खड़ा हो जायेगा। बोल करना है ऐसा ?

भगा : (**धक्का मारता है**) अबे, चल, चल, मिठाई के लिए जात बदलनेवाला कोई और होगा। (**जैसे कुछ सुनायी पड़ा हो इस तरह कान देता है। गांव में से गीत गाने की आवाज आती है**) लगता है मेले के लिए जा रहे हैं।

कोदर : हूं…।

भगा : हूं क्या तेरा सिर ? जल्दी चल नहीं तो तेरी बहू मेले चली जायेगी और फिर तू दोनों तरफ से जायेगा।

कोदर : क्यों ?

भगा : उधर तो मेला खत्म हो जायेगा और इधर अगर वह घर पर न हुई तो किसको ले जायेगा ?

(दुबारा कान देते हुए)

लगता है कि गीत गाने वालों में रूखी भाभी भी होगी।

कोदर : **(मुस्कुराते हुए)** तो हो।

भगा : क्या हो, तेरा सिर? **(कोदर को खड़ा कर देता है)** ऐसी सुस्ती से काम नहीं चलेगा। इस समय तो ··· मैं तुझसे ही पूछता हूं, यह तेरा कौन-सा चक्कर है?

कोदर : पांचवां।

भगा : और मुझे किसलिए साथ में लाया है?

कोदर : किसलिए क्या, मेरी सास से कुछ कहना ···।

भगा : और तेरी सास नहीं मानी तो?

कोदर : जैसे आये वैसे वापस।

भगा : **(छोटी आंखों से कोदर की तरफ देखता है)** क्या कहा रे? वापस? और वह भी खाली हाथ?

कोदर : अरे तेरा भला हो। इस समय न माने तो फिर ···।

भगा : **(मुंह बनाकर)** देख कोदर, मैं तुझे कहे देता हूं, जो कमी होगी मैं तेरी सास को साफ कह दूंगा, यह बात तो ठीक है, लेकिन मान लो ··· वह है विधवा, आदमी हो तो फिर भी दूसरी बात है, लेकिन अगर औरत करे तो अंत में जैसा तुझे घर पर कहा था, बहू को चोटी पकड़ कर आगे करना होगा।

कोदर : **(किसी मूर्ख की बात पर हंसता हो इस प्रकार हंसता है)** ठीक, भई ठीक। तू एक बार चल तो सही।

(चलने को होते हैं)

भगा : **(रोकता है)** ना, इस तरह खी-खी दांत निकालने से काम नहीं चलेगा, वचन देकर बात कर। **(हाथ रखता है)** मुझे तेरी तरह समाज में हंसी नहीं उड़वानी। कहेंगे कि कोदर भाई उस समय कैसी शान से भगा को ले गये थे और कैसे ले आये? वचन दे कि अगर नहीं भेजेगी तो आखिर में चोटी पकड़कर ही ···।

कोदर : **(आकुल होता है)** तू तो यार मूर्खों जैसी बातें करता है। वह कोई जानवर तो है नहीं जो चोटी पकड़कर ···।

भगा : जानवर नहीं तो और क्या है ? इंसान होती तो इन चौमासे के दिनों में तू एक तरफ हल हांकता और दूसरी तरफ अनाज कूटता ? तेरी बहू इतना भी नहीं जानती कि अकेले-अकेले …

कोदर : जानती है, भई जानती है, लेकिन मां-बाप की बात टालकर इस समाज में कोई ससुराल गया है जो मेरे घर … तू एक बार चल तो। वे लोग लौट रहे होंगे। (आगे करता है)

भगा : (दुखी मन से पैर उठाता है) अगर वे लोग चल पड़े हैं तो तू क्या जल्दी जाकर रोक लेगा ? (पल भर के लिए ठहर जाता है) मैं तुझसे ठीक कहता हूं कोदर, तू अपनी पत्नी को बेशक अपना समझता है। पर टीले पर चढ़ा भील और पीहर में गयी औरत न किसी की बात मानती है और न मानेगी।

कोदर : न माने तो मरे, पर मुझसे तो भाई, जैसा तू कहता है चोटी पकड़कर नहीं लायी जायेगी।

भगा : (एकदम रुक जाता है) तू ऐसे बोलता है तो मेरे दिल में आग भड़कने लगती है। क्यों ? तुझमें शक्ति नहीं है या हिम्मत नहीं है ? वैसे तो तू उस दिन पुलिस वाले के सामने भाग गया था और यहां …।

कोदर : वो पुलिस वाले के सामने तो … मुझे क्या उसके साथ जीवन बिताना था ?

भगा : कुछ नहीं (कोदर की ओर तिरस्कार से गरदन हिलाते हुए, पैर उठाता है) लोग जो कहते हैं, वह अब मुझे सच लगता है।

कोदर : (हंसते-हंसते) क्या कहते हैं लोग ?

भगा : यही कि तेरी बहू ने तुझ पर जादू कर दिया है वरना इतना होने पर भी तेरे जैसा पति (चलने का उपक्रम करते हुए) क्या वो कोई जानवर है ? और फिर स्त्री का मान पति न रखे तो दूसरा कौन रखेंगे। ऐसे विचार तो कोई … और वह भी इतने दुख पड़ने पर कोई … ऐसा करता होगा ?

कोदर : (हंसता है) अच्छा भाई, अगर जादू-टोना किया हो तो भी क्या हुआ ?

भगा : (चिढ़कर जैसे मारता हो ऐसे हाथ मलता है) चल, चल चुपचाप। वो उस बाल्या ने और तेरे चाचा वाले रणछोड़ ने क्या किया ? चोटी खींचकर उसे ले आया तो मजाल है अब कभी पीहर जाने का नाम ले। जाती है तो भी

खड़े-खड़े। तुझे तो ··· पर बहू का मन दुखे ऐसा ···।

कोदर : (**चिढ़कर**) तू तो **समझता** ही नहीं, भगा। उस बेचारी की दोनों ओर से मुसीबत है। एक ओर अगर मां-बाप की बात टालकर आती है तो जिंदगी भर के लिए पीहर का रास्ता बंद और लोगों में बातें हों सो अलग। दूसरी ओर तू कहता है इस तरह चोटी पकड़कर ···।

भगा : हां, भाई हां। चल चुपचाप। वो तो मैं समझ गया कि ··· नहीं तो, ऐसे विचारवाला मुझे कोई नहीं मिला। पर वो तो (**एक भारी श्वास लेता हुआ जैसे स्वगत बोलता हो**) हां, इसमें तू भी क्या करे ? सुंदरियों ने तो अच्छे-अच्छे ··· ऐसों को जिनकी मूंछ पर नींबू ठहर जाता है, उन्हें बकरी बना दिया तो तू बेचारा किस गिनती में ?

(**गांव की टोली आती हुई लगती है। दाएं हाथ को युवक-युवतियों की दो टोलियां दूसरे साथ की राह देखती गीत गाती खड़ी हैं।**)

युवक : 'चलो री गोरी मेला देखन'

युवतियां : 'चलो रे सैयां मेला देखन'

युवक : 'चलो री गोरी मेला देखन'

युवतियां : 'पांव मां घुंघुरवा बाजै रे'

युवक : 'ढोल बाजै रे'

भगा : (**टोली में बायें हाथ पर मुड़ते ही सामने रूखी और एक दूसरी युवती दिखायी देती है। उसकी बुआ की लड़की जमना कीमती साड़ी आदि नये कपड़ों को फहराती खुशी से फूली हुई आती दिखायी देती है**) लो, ले चल अब, तेरी सगली तो निकली मेले।

कोदर : (**मुंह उतर जाता है। जड़ होकर खड़ा रह जाता है**) [illegible], एक बात कहूं ···।

भगा : (**पीछे घूमते हुए**) पर तू खड़ा क्यों रह गया ?

कोदर : (**जैसे कोई गुप्त बात करनी हो ऐसे पास बुलाता है**) तू यहां तो आ ··· मैं कहता हूं कि हम भी मेले जायेंगे।

भगा : (**गुस्से से मुंह अधिक लाल हो जाता है**) क्यों ? तू लेने आया है या ···।

(**कोदर गीत गाती हुई युवतियों का साथ देती हुई रूखी और जमना

की ओर पुलकित दृष्टि से ताक रहा है।)

भगा : (दो-चार **पग चलकर कुछ** कहने के लिए पीछे **मुड़कर** देखता है। **कोदर** का ध्यान **पीछे खड़ी रूखी की तरफ** देखकर उसकी झुंझलाहट और बढ़ **जाती है। रूखी** और **कोदर** की दृष्टि आपस में मिलती देखकर और भड़क जाता **है। व्यंग्य में ही पूछता है**) है बिचार मेले जाने का ?

कोदर : (**खुश हो उठता है**) सच ? तू कहे तो···।

भगा : (**सांप के फन जैसे हाथ हिलाते हुए**) वाह रे वाह ! वह दूसरे पति के जाती हो और पति ही उसे विदा कराने आये यह तेरे जैसा ही कर सकता है। (**स्वगत**) अरे। राम-राम, भीगी बिल्ली बना दिया है। नहीं तो ऐसे···।

एक औरत : (**आंगन में से गुजरती हुई कोदर और भगा को**) आओ कोदरजी आओ दोनों जने।

(**रूखी अंजाने में चुप है।**)

बाकी युवतियां गाती हैं—

(**दूसरी बार गाते हुए जमना उसका पल्ला खींचकर गाने की ओर ध्यान दिलाती है। रूखी अनमनी-सी गाने लगती है, लेकिन उसकी दृष्टि और ध्यान कोदर की ओर ही है।**)

पलकों का दामन रे छोरा भड़के नहीं···।

(**पीछे गीत चलता रहता है।**)

युवक : आंखों को झुका ले रे, छोरी चौंके नहीं,
आंखों को झुका ले रे, छोरी चौंके नहीं।

युवतियां : हृदय हिलोरे रे, छोरा भड़के नहीं,
हृदय··· ··· ···।

(गीत की आवाज क्रमशः धीमी और हल्की होती जाती है। इसी बीच कोदर और भगा सास के घर पहुंच जाते हैं।)

सास आंगन में पांए से खूंटे की रस्सी खोलकर घर में जाती है। जूतों की ध्वनि सुनकर पीछे देखती है। मुंह उतर जाता है, मानों यम देखा हो।)

सास : आओ।

(सीधी घर में जाती है। चबूतरे के दायीं ओर कोठरी बनी है उसके बराबर ही में घर के अंदर जाने का दरवाजा है। कोदर दरवाजे के बायें

लगी हुई खाट को बिछा देता है।)

कोदर : बैठ।

भगा : (धीरे से क्रोध के साथ मानों स्वगत बोलता हो) मैं जानना चाहता हूं कि तेरा जैसा आदमी किस लिए जन्म लेता है।

कोदर : (न समझते हुए) क्यों ?

भगा : क्यों क्या ? वह मेले चली गयी और तुझ पर इसका कोई असर नहीं। देवीजी के मन में तेरे लिए जरा भी सम्मान होता तो···मां-बाप की बात टाल कर ससुराल नहीं आती यह तो समझ गया, लेकिन इस मेले में जाने से नहीं रुक सकती थी ? तू कहता है ना कि तुझसे उसको प्रेम है, इसलिए मुझे कहना पड़ रहा है।

कोदर : (उतरे मुंह को हास्य से ढंकने का प्रयत्न करते हुए) या तो उसने हमें देखा नहीं···।

भगा : (आंख और मुंह छोटा हो जाता है। कोदर की ओर सरकते हुए बीच में ही बोल उठता है) रहने दे, अब रहने दो। न जाने भगवान तुझसे झूठ कैसे बुलवा लेता है ? (आंख में आंख डालता है। उंगली उठाते हुए) सच बोलना। झूठ बोले तो, जिसे लेने आया है उसकी कसम। बोल तुम दोनों की आंख मिली थी कि नहीं ?

कोदर : (थोड़ी चिढ़ के साथ) मिली थी भई, पर या तो···वापस आती होगी, इसकी मां बिच्छू जैसी है यह तो तू जानता है···अगर पूछो क्यों वापस आ गयी तो···।

भगा : सफाई रहने दे, इतने से ही सब कुछ दीख गया। इसमें मां क्या कहती ? बल्कि इस तरह तो दिन भर काम होता और रुपये-पैसे अलग से बच जाते।

कोदर : (वास्तव में चिढ़ जाती है) छोड़ यार इस बात को···।

(इसी पल रूखी तथा जमना कोठरी की दूसरी दीवार पार करके खपरैल के सामने ही आकर निकलती हैं। कोदर का मुंह प्रसन्नता से खिल जाता है। यह देखकर भगा भी पीछे देखता है। रूखी और जमना को देखकर काला पड़ जाता है। रूखी चुपचाप रहती है जबकि जमना स्वागतार्थ घर में आती है।)

भगा : पतिदेव आये हैं तो कुछ रुपये-पैसे देंगे। इसीलिए ही वापस आयी

होगी ? ला, (**हाथ फैलाता है**) तुझे शर्म आती हो तो मैं दे आऊं।

कोदर : आज मेरा पिंड छोड़कर जिस काम के लिए आया है वो कर ना। तू सोचता है कि मेरी सास पूछेगी। पर कोई आशा नहीं, भले ही पंद्रह दिन…।

जमना : (**गद्दी लिए हुए बाहर निकलता है**) उठो, गद्दी बिछाने दो।

(**दोनों उठ जाते हैं।**)

भगो : गद्दी बेकार है। हमें तो वापस जाना है।

जमना : घोड़ा लाये हों तो ज़रा बांध दो, (**तिरछी नजर से कोदर की ओर देखती है**) आने में देर तो नहीं हुई ना (**भगा आंखें फेर लेता है**) बोलते हुए जरा भी शर्म नहीं आती ?

कोदर : इसमें शर्म की क्या बात है ? बस, तुम अपनी बुआ से कह दो कि लेने आये हैं।

सास : (**दरवाजे से बाहर निकलती है**) यह तो जूतों की खटखट सुनकर ही जान गये थे, पर जनाब को आज त्योहार के दिन ही फुरसत मिली थी ?

भगा : तब तुम ही कहो, और दिन यह अकेले ही हल चलाता है कि लेने आता…।

सास : तो क्या मेरी गरज है ?

(**आश्चर्य से आंखें चौड़ी करके देखता रहता है।**)

भगा : अरे भाई, इसकी गरज है, पर एक चक्कर हो तो बात भी है, उसका तो यह पांचवां…।

सास : पांच ही क्या दस भी होंगे। अब और कुछ कहलवाना है।

भगा : वो तो भई, तुम जानो और तुम्हारा जंवाई जाने। (**कोदर के सामने क्रोधित दृष्टि से देखता है**) बोल भई, इन्होंने तो ये कह दिया, तुझे कुछ कहना है ?

कोदर : (**कुछ क्रोध से**) इस बार तो इन्हें भेजना ही पड़ेगा और जबरदस्ती भेजना पड़ेगा।

सास : (**आश्चर्यचकित हो इस प्रकार कमर में हाथ रखकर**) क्या कहा ? फिर से तो कहना ?

कोदर : (**झुंझला उठता है**) तो क्या तुम्हारा डर है ? भेज दोगी तो क्या कोई नया काम करोगी ? घर में बिठाना था तो शादी क्यों करवायी थी ?

सास : तुम शहजादे से उस समय पूछने नहीं आयी। ठीक है। **(दरवाजे की तरफ मुड़कर)** देखती हूं, कौन लाट साहब का बच्चा जबरदस्ती ले जाता है। **(घर में जाकर रूखी से)** देखो छोरियो, तुम किस लिए वापस आयीं ? जाओ तुम अपने मेले में, कौन जबरदस्ती ले जाता है, देखूं।

भगा : **(धीरे से)** सुना ?

कोदर : **(सास को जवाब देता हुआ-सा)** नहीं तो चोटी पकड़ते कौन-सी देर लगती है ?

सास : **(घुस आती है)** तुम्हारे मुंह में दांत कितने हैं एक बार फिर से गिनना। मेरे होते तू मेरी लड़की की चोटी पकड़ेगा। देख मेरे आंगन में पत्थर कितने हैं गिन ले। गिने हैं ?

जमना : बुआ, तू चुपचाप घर में चल ना।

(खींचती है।)

कोदर : पत्थर-वत्थर तो ···। ये जरा आगे-पीछे का विचार आता है वरना तुम क्या कर सकती हो ?

(आंगन में खड़ी रूखी मुंह बनाती है।)

सास : विचार किया हो तो मुंह से ऐसी बात मत निकालता।

(घर में जाने को पीठ फेरती है। आंगन में खड़ी रूखी को) चल छोरी, मेले में नहीं जाना तो क्या घर में कोई काम नहीं है जो यहां खड़ी है ?

(सास घर के अंदर कुछ खटपट करती है। रूखी खड़ी रहती है । जमना उसको देखती हुई सामने आंगन में आकर खड़ी हो जाती है।)

भगा : तेरी सास तो भई बहुत तेज है। सिर में पत्थर भी मार दे तो बात नहीं।

कोदर : अरे मारा पत्थर।

भगा : तो अब तूने क्या सोचा है ?

(आश्चर्य से देखता है।)

कोदर : **(जोर से श्वास लेता हुआ)** विचार तो यह है, भगा कि मन और कांच का मोती एक बार टूट जाये तो फिर जुड़ते नहीं।

भगा : अरे इस अंग्रेजी समाज में वो भी जुड़ जाते हैं।

कोदर : **(फीकी हंसी हंसता हुआ)** जुड़ भी जाये तो जोड़ तो रह ही जाता है।

(रूखी मुंह बनाकर अंदर जाती है।)

भगा : ऐसा कर, तब तू अकेला टूटा मन और कांच जोड़। (उठता है) अपन तो चले।

कोदर : कहां ?

भगा : मेले में।

कोदर : (आंखें निकालकर धीरे से) बैठ, बैठ, चुपचाप। कलाबाजी मत कर। (अंदर की ओर गरदन घुमाकर आवाज देता है) कहां गयी जमना ?

जमना : (जमना-रूखी सामने आंगन में कुछ खुसर-फुसर कर रही हैं) क्या ? (बाहर निकलने लगती है रूखी हाथ दबाकर आंखों के इशारे से कुछ समझाती है। बाहर आकर गोद में चादर रखकर भगा के सामने देखती है) जा रहे हो क्या ?

(रूखी अंदर जाने लगती है।)

भगा : तो क्या करे ? अब भी समय है। मेले से ही सीधे घर पहुंच जायेंगे। कोई पूछेगा तो कह देंगे कि मेले गये थे।

कोदर : (जमना को) अपनी बुआ को कह दे कि लिये बगैर हम कभी नहीं जायेंगे।

जमना : (लाचारी और परेशानी से) पर बुआजी किसी की कुछ मानती हैं ? (कुछ विशेष बातें कहती हो इस प्रकार दरवाजे की तरफ देखती है) सीधी तरह तो बुआ किसी भी दिन नहीं भेजेगी··· दीवाली तक तो किसी हालत में नहीं। यह उसने तुम्हें कह दिया है।

(अंदर चली जाती है।)

कोदर : (विचारमग्न हो जाता है, दो-चार मिनट भगा से) तब तू जा, मैं तो बिना लिये आऊंगा नहीं। ये रही खाट और यह रहा आंगन। अब चाहे जितने भी दिन बीत जायें।

भगा : (सिर हिलाता है) चलूं। इससे तू थक जायेगा, पर तेरी सास नहीं थकेगी।

(रूखी कूड़ा निकालती-निकालती दरवाजे तक आ पहुंचती है।)

कोदर : कितने दिन ? दो, चार, छह। अंत में अपने-आप ही लोकलाज के मारे भेज देगी।

भगा : हां भाई। पर वहां तेरे ढोरों का क्या होगा ?

कोदर : अपनी मां को कह देना कि खोल-बांध देगी।

भगा : (हंसता है) वो तो सब हो जायेगा, पर मुझे तो तेरा यह सब बेकार ही लगता है।

कोदर : क्यों ?

भगा : क्यों क्या ? दुनिया में जो सोच-विचार करता है उसी के सिर पड़ती है। इसलिए समझदार को ही झुकना पड़ता है।

कोदर : किस लिए झुकेंगे ? ऐसे नहीं माने तो अंत में…।

(हंसने का प्रयत्न करता है।)

तेरी विद्या तो है ही ना।

भगा : कौन-सी ? हां, हां, समझ गया। वो चोटी… (रूखी कूड़ा निकालती हुई बाहर आ पहुंचती है। भगा चुप हो जाता है।)

कोदर : (रूखी को सुनाते हुए) हां तो थककर अपने-आप मान जायेगी। न मानें तो चोटी पकड़कर आगे।

रूखी : (कूड़ा निकालना चालू है। दरवाजे की तरफ एक नजर डालकर कोदर की ओर तिरस्कृत दृष्टि डालकर धीरे से) चोटी-चोटी करते हो। किसी दिन बकरी की पूंछ भी पकड़ी है ?

(कोदर तथा भगा क्षण भर तो आश्चर्यचकित होकर चुप हो जाते हैं।)

कोदर : (गुस्से से चेहरा लाल हो जाता है) क्या कहा ?

रूखी : अपने भाईबंध से पूछो।

भगा : (घरती कंपाती दृष्टि से पहले रूखी फिर कोदर की ओर देखता है। तिरस्कार और गुस्से से उठता हुआ-सा) अब तो चैन पड़ गया ? तू बैठ, मैं तो…।

कोदर : (भगा का कहा जैसे सुना ही नहीं, इस प्रकार रूखी की ओर देखता रहता है, क्षण-प्रतिक्षण उसका गुस्सा बढ़ता जाता है, क्या करूं क्या न करूं ? भगा के खाट से नीचे उतरने से पूर्व वह पीछे से चादर लपेटते हुए रूखी की ओर रख देता है) मैंने सोचा काहे को किसी का अपमान किया जाये, पर यह तो (कुछ न बनता देख कूड़ा निकालती रूखी को गले से पकड़ता है) चल आगे, नहीं तो (धक्का मारता है…फिर पकड़ता है। रोती हुई रूखी को आगे करके

बड़बड़ाता है) मैं जानता हूं कि मरेगी, लोगों को बेचारी क्या मुंह दिखायेगी ? चल, नहीं तो आज तेरी हड्डी-पसली एक कर दूंगा।

सास : (**आंधी की तरह धड़धड़ाती आती है**) मरे, नासपिटे जाता है या नहीं (**आंगन में से पत्थर उठाती है**)

भगा : अरी समधिन जरा सोचो···।

जमना : (**बुआ के हाथ से लिपट जाती है**) यह बुढ़िया कहीं उस लड़की का ही सिर न फोड़ दे ?

(**उसकी मदद के लिए तीन-चार पड़ोसी दौड़े आते हैं । गाली देती और छाती पीटती हुई सास को घेर लेते हैं ।**)

(**रूखी के रोने की आवाज आती है।**)

सास : मेरे होते हुए अगर कोई मेरी लड़की की चोटी खींचे तो मेरे जीवन को धिक्कार है ! छोड़ दो मुझे नहीं तो एक-आध को···।

जमना : (**भीड़ से बाहर आती है। पागल की तरह खड़े भगा के पास जाती है**) देख क्या रहे हो ? (**रूखी का रुदन सुनायी देता है, कोदर मारता हो ऐसी हल्की चीख सुनायी देती है···तेरी इतनी हिम्मत, ऐसे ? चल, नहीं तो जानती नहीं है हां···**) उस अभागन को मार डालेगा क्या ?

भगा : (**शांत होकर**) वह बोलती ही ऐसा है। उसने काम ही मार खाने के किये हैं।

जमुना : (**गुस्से से**) उसने मार खाने के काम किये हैं अच्छा—रहने दो अब यह सफाई—अगर रूखी ने ताना न मारा होता तो तुम्हारा दोस्त तो सोचते-सोचते ही सोच में पड़ जाता।

भगा : (**ठीक से न समझते हुए आश्चर्य से**) तो क्या··· रूखी भाभी ने जान-बूझ कर··· ससुराल जाने के लिए ही इतना···?

जमना : (**ज़ोर-ज़ोर से रोती हुए बुढ़िया की तरफ देखकर बीच में बोलती है**) और क्या ? उस लुच्ची को पति का ही मोह लगा है।

भगा : (**खुश होकर**) ओ हो ! तो ऐसे कहो ना। मैं तो समझता था कि रूखी भाभी ने कोदर पर जादू डाला हुआ है, पर यह तो उल्टा निकला, जादू तो उल्टे कोदर ने···

जमना : (**हास्ययुक्त होंठ और उलाहने भरी दृष्टि से**) तो तुम ही क्या कम

हो ? (**भगा के सामने मानो स्वर्ग उतर आया हो। जमना उसे धक्का देती है**) जाओ ना, जब उसे अधमरा कर देगा तब जाओगे क्या ?

भगा : (**कमर के पीछे चद्दर लपेटते हुए हड़बड़ी का अभिनय करता है**) यह चला, पर इस खुशी में तो रूखी भाभी को मेले में ले जाना पड़ेगा। (**एक कदम पीछे होकर**) एक बात कहूं (**धीरे से**) तुम भी मेले चलो ना ? (**जमना सोच में पड़ जाती है, बुआ की ओर देखती है वह नाक सिनकती बुआ ही रोती आवाज में उसे कहती है।**)

सास : कहां गयी जमना ? जाकर उस छोरी को कपड़े तो दे आ, साड़ी पहनकर मेले में जाने के लिए निकली थी तब से—

जमना : (**कूदती है। भगा के सामने आंख और गरदन झुका कर कुछ समझाती-सी बुआ के पास दौड़ जाती है। लाड़ से**) ऐ बुआ, भगाजी मेले जा रहे हैं, तुम कहो तो मैं भी कोदर जी को समझाकर रूखी को भी···

सास : सब जाओ अपने खसमों के (**जमना घर की ओर दौड़ती है। सास बड़बड़ाती है**) भाड़ में जायें तेरे कोदरजी। बेचारी छोरी को, मरा नासपिटा अब तो मेरे आंगन में आये तो पैर तोड़ दूं, हां···

जमना : (**बगल में साड़ी आदि दो-तीन कपड़े लेकर आंधी की तरह बाहर निकलती है। आंगन में खड़े भगा के पास पहुंचकर मटकती है**) तुम अभी यहीं खड़े हो ? उसको तो···

भगा : (**पास आते हुए**) वह तुम्हारी ही बहन है ना, चुप हो गयी है। इससे ही समझ जाओ ना।

(**दोनों जाते हैं।**)

पड़ोसनें : (**सास को सांत्वना देती हैं**) लड़की के मां-बाप सदा ही झुकते हैं।

सास : हाय, बाप रे। पर वो नासपिटा कसाई मेरी लड़की को घर ले जाकर मार डालेगा।

दूसरी पड़ोसन : क्या ? अरे देखना दो दिन बाद तुम्हीं सुनोगी कि दोनों एक···

(**गाने की आवाज आती है। दो-चार क्षण की शांति के पश्चात लगभग सभी स्त्रियां हंस पड़ती हैं।**)

तीसरी बूढ़ी स्त्री : सुनो, तुम तो दो दिन की बात करती हो और यह तो

अभी से ही—(**सास को आंख का इशारा करती हुई**) ऐसा है बहन। मिलकर गाना गाते मेले में चलते हैं। (**खड़े होते हुए**) चलो री चलो, सब काम पर लगो। (**वाक्य के समाप्त होते-होते बाकी स्त्रियां खड़ी हो जाती हैं। जाते-जाते एक कदम पीछे होकर सास के सामने हाथ नचाकर**) समझ जा मेरी बहन। यह तो सब जवानी के झगड़े हैं।

(**चलने लगती है।**)

तीनों स्त्रियां : (**जाते हुए हंसती हैं**) बिलकुल ठीक कहा, अम्बा मौसी।

बूढ़ी अम्मा : (**जाते-जाते**) जरा ध्यान से सुनो, वो तुम्हारी लड़कियां ही गा रही हैं।

(**मेले जाते दो-चार युवक-युवतियों की आवाज़ आती है।**)

कोदर तथा भगा की आवाज़…

मैं तो उड़ जाऊं रे, मन करे उड़ जाऊं रे।

(**रूखी तथा जमना की आवाज़…**)

ओ पिया के साथ जाऊं ऐसा मन करता है।

सास : (**खड़ी हुई भारी श्वास लेती है**) जाओ। लड़की तो पराया धन है कहां तक रख सकते हैं ?

(**परदा गिरता है।**)

सुई की नोक

—जयंति दलाल

पात्र

भाई साहब

नागरदास

नंदनंदन

पार्षद

उत्तमचंद

चित्रगुप्त

भोगीलाल

अग्निकुमार

शक्तिशरण

(प्रेक्षक को रंगमंच के पास बिठाया जाता है। प्रेक्षक के मन में विचार उठता है कि यह सामान्य रंगमंच से कुछ भिन्न-सा है। यहां प्रेक्षक तथा अभिनेता को अलग करने वाला परदा नहीं है। प्रेक्षाग्रह में कुर्सियां हैं, उसी प्रकार मंच पर भी अर्धचंद्राकार कुर्सियां बिछी हैं। मंच के मध्य एक बड़ी मेज है। मेज पर बिछी हुई चादर ही एकमात्र यवनिका है।

थोड़ी देर पश्चात, प्रेक्षक आते-जाते हैं। बहुत-से सीधे रंगमंच की कुर्सियों पर बैठ जाते हैं। सबके चेहरे गंभीर हैं। परस्पर कोई बात नहीं करता। एक बहुत गंभीर दीखने वाला कार्यकर्ता मेज के पास हाथ में एक पत्रिका देखता हुआ बैठा है।

सबका ध्यान दरवाजे में से दाखिल होते हुए एक प्रौढ़ व्यक्ति पर केंद्रित हो जाता है। टोपी, कुरता, कुरते की बांह पर बंधी घड़ी तथा उसमें सोने की चैन, हाथ में लकड़ी पकड़े हुए, दोनों हाथ जोड़ कर नमस्कार करता हुआ आता है। इस प्रकार नाटक में नान्दी का कार्य पूरा होता है।

नाटक प्रारंभ होता है। आने वाला कार्यकर्त्ता एक पत्रिका पढ़ता है।)

"आपके शहर के अग्रगण्य नागरिक, सुपरिचित उद्योगपति, सुप्रसिद्ध दानवीर तथा स्वावलंबी सेठ नंदनंदन के शोकजनक देहांत पर दुख प्रगट करने के लिए नगरवासियों की एक सार्वजनिक सभा गुरुवार को सायं छह बजे हाल में होगी।" (कागज को मोड़ते हुए) मैं श्री भाई साहब से आज की इस सभा का अध्यक्षपद ग्रहण करने का निवेदन करता हूं। श्री भाई साहब का परिचय देने की मैं आवश्यकता नहीं समझता। पिछले तीन वर्षों से शहर की प्रत्येक कल्याणकारी प्रवृत्ति की प्रेरणा और उसका संचालन श्री भाई साहब ने ही किया। सेठ नंदनंदन के साथ भी उनका अत्यंत निकट का संबंध था।

(अपना स्थान लेता है। श्रोतागण में से एक-आध ताली बजती है।)

नागरदास : अध्यक्षपद के लिए श्री भाई साहब से, जो निवेदन किया गया है, मैं उसका अनुमोदन करता हूं।

(श्री भाई साहब अध्यक्ष पद ग्रहण करते हैं। जेब में से कागज तथा चश्मा निकालते हैं। भली प्रकार चश्मा लगाकर कागज पर दृष्टि डालते हैं। साथ बैठे

कार्यकर्त्ता से कुछ परामर्श करते हैं। तत्पश्चात अपना वक्तव्य प्रारंभ करते हैं।)

भाई साहब : भाईयो तथा बहनो, स्वर्गवासी सेठ नंदनंदन के साथ अपने संबंध को देखते हुए आज की इस सभा में उनके विषय में कुछ कहना मेरे लिए बहुत कठिन है। संसार में उत्पन्न हुआ कोई भी व्यक्ति सदैव जीवित नहीं रहता। सभी को मृत्यु से साक्षात्कार करना है। व्यक्ति जो सौरभ छोड़ जाता है वही बाद में रहती है। और वास्तव में जीने का अधिकार भी उन्हीं को है। सेठ नंदनंदन भाई को यह अधिकार उनके पुरुषार्थ के कारण मिला था, जिसका मैं साक्षी हूं। मेरा और उनका तीस साल से गहरा संबंध है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि नंदनंदन भाई के जीवन में ऐसा सौरभ था, जिससे उनकी स्मृति गुजरात और विशेष रूप से आपके शहर में हर एक नागरिक के हृदय में अमिट रहेगी। नीचे तबके से आरंभ करके अपने पुरुषार्थ द्वारा वह ऊंचे स्थान पर पहुंचे। उनको अपनी सफलता पर गर्व नहीं था, पर प्रयत्न ···

(अचानक रंगमंच पर अंधकार हो जाता है, प्रेक्षकों में कुछ खलबली होती है, किंतु प्रसंग की गंभीरता उन्हें आवरण की मर्यादा में आबद्ध रखती है। रंगमंच पर प्रकाश होता है। पहले तो आंखें चौंधिया जाती हैं, तत्पश्चात् विस्मय की आवाजें निकलती हैं, क्योंकि रंगमंच पर सभाग्रह दिखायी नहीं देता। वहां एक विशाल राजमार्ग दीखता है, जो स्फटिक के स्तंभद्वार के बीच से होकर लंबा चला गया है। प्रेक्षकों का विस्मय जरा कम होता है तभी सेठ नंदनंदन का प्रवेश।)

नंदनंदन : यह क्या तरीका है? किस व्यक्ति से किस तरह बात करनी चाहिए इसका ज्ञान भी है या नहीं?

(नंदनंदन के पीछे आता हुआ एक मोटा-सा पार्षद उसे आगे करके जवाब देता है।)

पार्षद : मनुष्य कैसा है, इसका अभी पता चल जायेगा।

नंदनंदन : मतलब? बात करनी भी नहीं आती? कौन है तुम्हारा मालिक?

पार्षद : मालिक-वालिक तो जहां से आये हो वहीं रह गया।

नंदनंदन : तो यहां क्या है?

पार्षद : मामा का घर। कुछ दूर नहीं है।

नंदनंदन : मेरे यहां कोई आदमी इस तरह बोले तो चार तमाचे रसीद करके बाहर निकाल दूं।

पार्षद : वो सब बातें तुम्हें अभी याद आ जायेंगी।

नंदनंदन : बेवकूफ। अब तक मुझे लेने के लिए भी किसी को नहीं भेजा ?

पार्षद : क्यों, मैं जो आया हूं ?

(पास से एक पालकी गुजरती है।)

नंदनंदन : अरे, यहां कौन बेवकूफ काम करता है ? वह पालकी में और मैं पैदल ? उसको जानते हो ? नौकर था नौकर, मेरे यहां !

पार्षद : जिसे तुमने चार तमाचे रसीद किये थे वही न ?

नंदनंदन : नहीं, नहीं, वह नहीं। यह तो मेरे मिल में काम करता था। अभी तीन दिन हुए कुत्ते का पट्टा चढ़ाये आ गया था। उसको पालकी ?

पार्षद : हां। उसे बेचारे के पांव ही कहां हैं ?

नंदनंदन : यह पांव का नहीं, प्रतिष्ठा का प्रश्न है।

पार्षद : किसकी प्रतिष्ठा ?

नंदनंदन : कौन-सी जाति का है ? नीच, व्यक्ति को पहचानते ही नहीं।

पार्षद : जाति-कुजाति की कसौटी के लिए ही तुम जा रहे हो।

नंदनंदन : जा रहे हो ? मतलब ? तुम मुझे कहीं ले जा रहे हो ?

पार्षद : किसी को ले जा नहीं रहा। मनुष्य मरता है, इसलिए उसको अपने जीवन के पाप-पुण्य का लेखा-जोखा करने चित्रगुप्त के दरबार में आना पड़ता है।

नंदनंदन : चित्रगुप्त ! यह चित्रगुप्त कौन है ?

पार्षद : अभी पता चल जायेगा।

नंदनंदन : तो यूं कहो कि पाप-पुण्य का लेखा-जोखा होगा। फिर क्या होगा ?

पार्षद : घाटा-जोड़, और फिर गुणा। पर उसका तो तुम्हें अभी पता चल जायेगा, यानी ज्यादा कहने की आवश्यकता नहीं।

नंदनंदन : चित्रगुप्त के दरबार में विवेक तो है ही नहीं। मनुष्य का आदर कैसे किया जाता है, लगता है यह भी कोई नहीं जानता। तिस पर व्यवहार में पक्षपात भी बहुत है।

पार्षद : वह कैसे ?

नंदनंदन : देखो ना, उसे पालकी और मैं पैदल। मालूम है तुझे मैं कौन हूं ?

पार्षद : यह मैं नहीं जानता। पर तुम्हारा क्या होगा, वह मुझे मालूम है ?

नंदनंदन : क्या होगा ?

पार्षद : देवाधिदेव के मुख से ही सुन लेना ना ?

(रंगमंच पर अंधकार छा जाता है। पुन: प्रकाश होता है और सभागृह दिखाई देता है। वक्ता उत्तमचंद भाषण कर रहे हैं।)

उत्तमचंद : मैं आपको स्वर्गवासी सेठ नंदनंदन के विषय में बताना चाहता हूं कि किन कठिन परिस्थितियों में इन्होंने जीवन का कार्यकाल आरंभ किया और अपने प्रयत्नों के फलस्वरूप किस प्रकार आगे बढ़े। इस नगर के वृद्ध स्त्री-पुरुषों को अभी भी एक युवक का चेहरा याद होगा। वह युवक फेरी लगाता था। अपने हंसमुख चेहरे से उसने लोगों के मन को जीत लिया था। अपनी कुशल तथा व्यवसायिक बुद्धि से उसने अनेक व्यापारियों का स्नेह जीत लिया था। फेरी के दो-तीन वर्ष पश्चात् उसने एक छोटी-सी दुकान खोली। वह थी स्वर्गवासी सेठ नंदनंदन के व्यापारी जीवन की शुरुआत···

(अंधकार : प्रकाश होता है। चित्रगुप्त के दरबार में सेठ नंदनंदन खड़ा है।)

नंदनंदन : यह कहने का तुम्हें क्या अधिकार है ? मैंने जो कुछ कमाया है, वह अपने बाहु-बल तथा बुद्धि-बल से कमाया है।

चित्रगुप्त : तुमने केवल अपनी शक्ति से ही कमाया है ?

नंदनंदन : हां, हां, अपनी शक्ति से ही।

चित्रगुप्त : देखो, इस विषय में स्पष्ट रूप से जो बात है वह कहो, यह तुम्हारे अपने हित की बात है।

नंदनंदन : यानि तुम यह कहना चाहते हो कि मैं झूठ बोल रहा हूं ?

चित्रगुप्त : संभवत: अपने सारे जीवन में यह तुमने पहली बार सच बोला है।

नंदनंदन : इतना अपमान मैं नहीं सह सकता।

चित्रगुप्त : अपमान की बात मत करो, नंदनंदन। तुम्हारे जीवन की, तुम्हारे मन की सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा गुप्त से गुप्त बात हम जानते हैं। तुम स्वयं यह कह दो और कबूल कर लो। मैं तुम्हें फिर कहता हूं कि यह तुम्हारे अपने हित की बात है।

नंदनंदन : मुझे कुछ कहना-सुनना नहा है।

चित्रगुप्त : ठीक। जैसी तुम्हारी इच्छा। (**पार्षद से**) जाओ भोगीलाल को बुला लाओ।

(**पार्षद जाता है।**)

नंदनंदन : भोगीलाल ?

चित्रगुप्त : ओ। तो तुम्हें अभी उसकी याद है ?

नंदनंदन : भोगीलाल ! भोगीलाल ! यहां कैसे ? यहां क्या करने आया ?

चित्रगुप्त : तुम यहां आने वाले हो इस समाचार के मिलते ही उसे फौरन उपस्थित किया गया। यह आ गया भोगीलाल।

नंदनंदन : (**भोगीलाल को देखता रहता है**) भोगीलाल, भोगीलाल।

भोगीलाल : हां, नंदनंदन सेठ, पहचान तो लिया।

नंदनंदन : भाई, तुम यहां ?

भोगीलाल : क्या करें भई, यही एक ऐसा स्थान है जहां छोटे, बड़े, गरीब, अमीर सबको आना पड़ता है।

नंदनंदन : भोगीलाल, मुझे समझ ही नहीं आ रहा कि तुम क्या कह रहे हो ?

चित्रगुप्त : लो, मैं समझा देता हूं।

नंदनंदन : दो की बातों में तुम व्यर्थ में क्यों टांग अड़ाते हो ?

पार्षद : क्यों ? संसार की खुमारी अभी उतरी नहीं ?

चित्रगुप्त : नंदनंदन तुम कह रहे थे कि जीवन में तुम अपने वल से आगे बढ़े हो। है ना ?

नंदनंदन : हां, बिलकुल ठीक।

चित्रगुप्त : इस भोगीलाल को देखकर भी तुम ऐसा ही कहोगे ?

नंदनंदन : यह हम दोनों को देखना है।

पार्षद : यहां 'हम' कोई नहीं। यहां केवल 'मैं' और 'तू' है।

नंदनंदन : कैसा नालायक है ? स्वार्थी।

चित्रगुप्त : नंदनंदन तुम्हारे अतिरिक्त इन शब्दों को बोलने की किसी में सामर्थ्य नहीं। क्योंकि स्वार्थवश एक भले मित्र की गरदन पर···

नंदनंदन : यह झूठ बात है। मैं···

भोगीलाल : मैंने ऐसा कब कहा ? मैं तो इतना ही कहता हूं कि जिसे तुम अपना बल कहते हो उसके पीछे दो-तीन वर्ष का संबंध और तुम्हें ऊंचा उठाने में मेरे दस हजार रुपये भी शामिल थे।

नंदनंदन : पर···पर···।

चित्रगुप्त : अब भी मैं तुमसे कबूल करने को कहता हूं। अंत में तो तुम्हें कबूल करना ही है।

नंदनंदन : पर इसमें मेरी नियत खोटी नहीं थी। जब मेरे पास पैसा हुआ तब तुरंत ही मैं उसे भोगीलाल को वापिस करना चाहता था। पर तब तक भोगीलाल तो गुजर चुका था।

चित्रगुप्त : इसलिए बाद में पैसा वापिस करने का तुम्हें अवकाश ही नहीं मिला। ठीक है ना ?

नंदनंदन : हां···ना···।

(अंधकार : प्रकाश होता है। सभागृह दिखाई देता है। वक्ता राजेश्री अग्निकुमार भाषण करते हुए दिखाई पड़ते हैं।)

अग्निकुमार : सज्जनो, सबके मुख से आपने सुना कि प्रमाणिकता ही जीवन व्यवहार की बुनियाद होनी चाहिए। प्रमाणिकता से तात्पर्य केवल रुपये पैसे का लेनदेन ही नहीं होनी चाहिए। कैलाशवासी सेठ नंदनंदन ने इस बार जीवन में आचरण द्वारा कर दिखाया। कितने ही प्रसंगों का मैं साक्षी रहा हूं। किसी का खोटा पैसा भी अपने पास रह जाये तो उन्हें बहुत दुख होता था। और जब तक वह उसके असली मालिक के पास नहीं पहुंचा देते थे, तब तक उन्हें चैन नहीं पड़ता था। कितने ही बालकों की संपत्ति तथा विधवाओं की पूंजी उनके पास अमानत के रूप में रहती थी। उनमें से हरेक उन्हें हृदय से दुआ देता था। गीता का आदर्श तो उनके जीवन का आधार था···

(अंधकार : प्रकाश होता है। चित्रगुप्त का दरबार।)

नंदनंदन : झूठी बात, साहब, झूठी बात।

भूली बुढ़िया : सारी जिंदगी इसने झूठ बोला है। लेकिन यहां तो कबूल करने पर ही छुटकारा मिलेगा ?

नंदनंदन : पर कबूल क्या करूं ? तुम्हारा सिर ?

चित्रगुप्त : नंदनंदन तुम्हारे यहां बहुतेरे लोग अपनी अमानत रखने आते थे। यह तो ठीक है ना ?

नंदनंदन : हां, वह तो मेरी साख थी, इसलिए सब रख जाते थे। मुझे उस पर नाग जैसी चौकसी रखनी पड़ती थी। बदले में मिली बदनामी।

मूली बुढ़िया : नंदुभाई, मैंने तुम्हें ऐसा नहीं समझा था।

नंदनंदन : मूली बहन, तुमने मुझे क्या समझा था, इससे मुझे क्या सरोकार ? मुझे दूसरे काम भी करने थे कि नहीं ?

चित्रगुप्त : दूसरे काम अर्थात धनप्राप्ति ? अर्थोपार्जन ही ना ?

नंदनंदन : हां, जो कर्तव्य है वह तो अदा करना ही है, नहीं ?

चित्रगुप्त : मैं कहता था ना ? इसीसे यह खुशहाल हुआ था। अमानत रखना भी अर्थोपार्जन का ही साधन था नहीं ? कितनों की पूंजी तुमने वापिस की ? कितनों की अमानत लौटाई ? कितनों के डिब्बे हड़पे ? बोलो ?

नंदनंदन : यह झूठ है।

चित्रगुप्त : इस मूली बहन का धन तुमने वापिस किया ?

नंदनंदन : नहीं। क्योंकि वो पैसा इसका था ही नहीं।

मूली बहन : तब किसका था ?

नंदनंदन : धर्मदान का। मूली बुढ़िया ने यही कहकर रखा था।

मूली बहन : नराधम, झूठ बोलता है। मैंने ऐसा नहीं कहा।

नंदनंदन : इसमें कहने की क्या ज़रूरत है ? किसी का कोई वारिस न हो तो वह धन धर्मदान का ही तो कहलायेगा ?

चित्रगुप्त : अर्थात उसके वारिस तथा उपभोग करनेवाले तुम हो, ठीक है न ?

नंदनंदन : तुम लोग एक ही तरह सोचते हो। उसका मतलब भी समझ लेना चाहिए।

चित्रगुप्त : किसी के सारे जीवन की कमाई तुम छीन लो और उसे भूखा मरने लायक कर दो। यही है न तुम्हारा मतलब ?

नंदनंदन : लगता है मुझे यहां न्याय नहीं मिलेगा।

चित्रगुप्त : क्योंकि सच्चा न्याय क्या है, यह तुम्हें मालूम ही नहीं।

(अंधकार : प्रकाश। सभागृह। श्री चेतन व्याख्यान दे रहे हैं।)

चेतन : मेरे मन में एक मान्यता इतनी दृढ़ हो गई है कि दुनिया में मनुष्य जितना कुछ सत्कार्य करता है, उसके पीछे उसके मन में उतनी ही यश-लालसा होती है। ऐसा विश्वास हो गया है कि नि:स्वार्थ सेवा इस दुनिया की वस्तु न होकर किसी अन्य दुनिया की वस्तु है। स्वर्गवासी सेठ नंदनंदन इसके अपवाद थे, ऐसा मैं निजी जानकारी से कह सकता हूं। दान करने के पीछे उनकी यश-लालसा अथवा दुनिया की वाहवाही नहीं थी। नंदनंदन भाई ने दुनिया के दुख-सुख दोनों देखे थे। जीवन के शीत-ताप दोनों उन्हें मिले थे। वसंत और पतझड़ दोनों का उन्हें अनुभव था। यह अनुभव सहानुभूतिपूर्ण था जो संवेदना जागृत करता था।

किसी के दुख पर अपनी कीर्ति मीनार बनाने की आकांक्षा उनमें नहीं थी। वह कहते थे : किसी का दुख तिल-भर भी मैं कम कर सकूं, उसका जितना लाभ मुझे इस जीवन में है उतना और कहां ? इस संपत्ति का उपभोग यदि औरों के लिए हो सके तो उसकी और सार्थकता क्या हो सकती है ? इसीलिए उन्होंने मुक्त-हस्त से, उदार हृदय से व्यक्ति, संस्था, सब का निर्वाह किया। आज सेठ नंदनंदन की कमी सबसे अधिक तिरस्कृत समाज और अनाथों को महसूस हुई है।

(**अंधकार : प्रकाश। चित्रगुप्त का दरबार।**)

चित्रगुप्त : तो तुम्हारा दान कीर्ति के लिए नहीं था ?

नंदनंदन : कीर्ति तो मुझे इतनी मिली कि मुझे उसे खरीदने की आवश्यकता नहीं पड़ी।

चित्रगुप्त : तो तुम्हारे दान का उद्देश्य क्या था ?

नंदनंदन : तुम भी कैसा प्रश्न करते हो ? दान के पीछे क्या उद्देश्य होगा ? दुख न देखा जाये तो उसे कम करने का प्रयत्न कीजिये। दो पैसे देकर छूटिए।

चित्रगुप्त : पर दुख न देखा जाये यह स्थिति कब आती है ?

नंदनंदन : अगर मनुष्य है और उसके दिल है, तो इस स्थिति के आने की प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती।

चित्रगुप्त : अच्छा ? (**बात बदलते हुए**) तुम मालती को तो पहचानते ही होगे ?

नंदनंदन : मालती ! क्या कहते हो ?

चित्रगुप्त : स्मृति को ताजा करके देखो। तुम्हारे बंगले के पड़ोस में एक परिवार रहता था। वहां एक विधवा पुत्रवधू रहती थी। (**थोड़ी देर अटक

जाता है) स्मृति को ताजा करने के लिए अभी और बताऊं ?

नंदनंदन : अब ताजी हो गई। तुम्हें इससे क्या ?

चित्रगुप्त : मुझे इतना ही कहना है कि अनाथाश्रम से तुम्हारा संबंध मालती के कारण ही हुआ। उसके बाद इसी कारण तुमने विधवाश्रम की भी सहायता की।

नंदनंदन : तो तुम यह दिखाना चाहते हो कि मैं दुनिया का महान पापी हूं।

चित्रगुप्त : पाप की तुम्हारी व्याख्या क्या होगी, यह मैं नहीं जानता। लेकिन मालती की बार-बार हुई दुर्दशा में जब अपने किये का विचार आया तब फौरन तुमने अनाथाश्रम की सहायता करने का निश्चय किया, यह सब है कि नहीं ?

नंदनंदन : इसके लिए तो मनुष्य को शीर्ष स्थान मिलना चाहिए।

चित्रगुप्त : शीर्ष-स्थान तो तुम्हें मिला ही है। अपने जीवन-काल और मृत्यु के पश्चात भी दुनिया तुम्हें दानवीर कहती है। इतना आदर क्या कम है ?

नंदनंदन : व्यंग्य और कटाक्ष दोनों समझने की चीज़ है। पर उनको मैं पाप नहीं मानता। बल्कि गीता के उपदेश को जीवन में उतारने का गौरव भी ···

पार्षद : कर्मयोगी का आदर्श ? ···

(अंधकार : प्रकाश। सभागृह। देशप्रिय शक्तिशरण भाषण करता है।)

शक्तिशरण : अपने देश में पैसेवालों की राजनीति एक अलग बात है। उसका परम सिद्धांत स्वार्थ-सिद्धि होता है। चोर से कहे चोरी कर और साहूकार से कहे होशियार रह। जनता की भावनाओं का गलत फायदा उठाने को ही ये देश-सेवा मानते हैं। ऐसी स्थिति में सद्गति प्राप्त नंदनंदन का राष्ट्र-प्रेम, उनकी ज्वलंत देश-भक्ति, सिद्धांतनिष्ठा तथा दानशूरता वास्तव में अप्रतिम थी। त्याग करने में वह कभी नहीं डिगे। अपमान के साथ की गई तुच्छ स्वार्थ-साधना के लिए वे कभी भी तैयार नहीं होते थे। उनके व्यवहार में देश-प्रेम के ज्वलंत उदाहरण हमें हर जगह दिखाई पड़ते हैं।

(अंधकार : प्रकाश। चित्रगुप्त का दरबार।)

चित्रगुप्त : नंदनंदन भाई, अब हम तुम्हारी देश-सेवा की बात करें।

नंदनंदन : इसमें बात करने के लिए क्या है ? मेरा कर्तव्य था और उसे मैंने पूरा किया।

चित्रगुप्त : बिलकुल ठीक। तुम्हारा और सबका कर्तव्य। क्या पूरा किया प्रश्न यह है ?

नंदनंदन : देश-भक्तों द्वारा शुरू किये हुए फंड में से पैसा देने में मैंने कभी भी आनाकानी नहीं की। उनके लेन-देन के विषय में मैंने एक शब्द भी नहीं कहा। मैंने तो उन्हें पैसा दे दिया, बाद में उन्हें जो करना था वह किया।

चित्रगुप्त : पर तुमने केवल देश-सेवकों को ही पैसा नहीं दिया, बल्कि सरकारी कर्मचारियों को भी खूब पैसा दिया ?

नंदनंदन : ठीक बात है। तुम जैसों को यह अनुचित लगता है, क्योंकि तुम लोग व्यवहारिक नहीं हो। दुनिया में रहना तुम्हें नहीं आता। दुनिया में रहना हो तो धूल की भी जरूरत पड़ती है और जरूरत पड़ने पर सब वस्तुओं की अपनी कीमत होती है। मुफ्त के हवा-पानी से पेट थोड़े ही भरता है ?

चित्रगुप्त : तब तो यह फंड जीवन की कीमत चुकाने के प्रश्न जैसा ही है, नहीं ?

नंदनंदन : इसमें बुराई क्या है ? और इस बहाने मैं थोड़ा-बहुत देशवासियों का सहायक भी हो सका।

चित्रगुप्त : उस स्वदेशी आंदोलन का क्या हुआ ?

नंदनंदन : उसके प्रचार के पीछे मैंने लाखों रुपये खर्च किये। देश में स्वदेशी का उपयोग होने से परदेसी सत्ता स्वयं ही टूट जाये।

चित्रगुप्त : इसमें कुल मिलाकर कितना लाभ हुआ ? स्वदेशी भावना से तुम्हारे कारखाने को कितना प्रोत्साहन मिला ?

नंदनंदन : यह तो सीधा अर्थशास्त्र का प्रश्न है। मतलब मांग के साथ पूर्ति होती रहे।

चित्रगुप्त : और सोती हुई मांग को क्या ढिढोरा पीटकर जगाना पड़ता है।

नंदनंदन : हां, ऐसा भी हो सकता है।

चित्रगुप्त : स्वदेशी के नाम से तुमने सब स्वदेशी ही दिया है ?

नंदनंदन : स्वदेशी की तुम कितनी संकुचित व्याख्या करते हो ?

चित्रगुप्त : जो तुम बेचो, वह सब स्वदेशी, ऐसी व्याख्या तुम्हें रुचिकर लगेगी ?

नंदनंदन : वह तो ठीक है, पर प्रजा की ज़रूरत पूरी करने का मेरा दृढ़ नियम रहा है।

चित्रगुप्त : तो फिर तुम कालाबाजार क्यों करते हो ?

नंदनंदन : वास्तव में जैसा समझदार व्यक्ति जब ऐसा कहता है तो मुझे क्रोध आता है। पहली बात तो यह है कि बाजार केवल काला है। सफेद बाजार तो बेवकूफों की कल्पना का विषय है। दूसरी बात ऐसा करने से देश की वस्तु देश में ही रहती है। इसके गुण तुम्हारी समझ में नहीं आयेंगे। और तीसरी बात यह है कि तुम्हें गढ़े मुर्दे उखाड़ने का बड़ा निकम्मा शौक है। मैं तो हमेशा कहता ही था कि भाइयो जो बीत गया वो बीत गया, अब आगे की बात करो।

चित्रगुप्त : तुम तो कालाबाजार संहारक समिति में थे ? है ना ?

नंदनंदन : उसका प्रमुख था।

चित्रगुप्त : तब ठीक है। तुम तो व्यवहारिक रहे हो। तुम्हारी समिति का काम करना है तो कालाबाजार होना ही चाहिए। वरना तुम संहार किस का करोगे ?

नंदनंदन : सच पूछो तो अब मेरी तुम पर कुछ श्रद्धा बढ़ती जा रही है। मेरे साथ रहो तो तुम्हें मैं व्यवहारिक बना सकता हूं।

चित्रगुप्त : धन्यवाद ! पर मुझे यह सौभाग्य नहीं मिल सकता।

नंदनंदन : कारण ?

चित्रगुप्त : क्योंकि तुम्हारा मुकद्दमा समाप्त हो गया। अब फैसले की बारी है।

नंदनंदन : किसका फैसला ?

पार्षद : मैंने कहा था ना वो जोड़-घाटा। वो हो गया। अब गुणा की बारी है।

(अंधकार : प्रकाश। सभागृह। भाई साहब उपसंहार कर रहे हैं।)

भाई साहब : ऐसे एक वीरपुरुष की क्षति से शहर आज मानो अस्त-व्यस्त हो गया है। उनके रिक्त स्थान की पूर्ति के लिए कोई भी व्यक्ति दिखाई नहीं पड़ता। केवल इतना ही दुख नहीं है। दुख तो यह है कि मनुष्य का हृदय संकुचित होता जा रहा है। समष्टि के कल्याण की भावना आज पुस्तकों की बात बनकर ही रह गई है। पर मुझे इसका भी दुख नहीं। एक प्रकार से कहूं तो अपने जीवन में

उपनिषद् का परम आदर्श 'तेन त्यक्तेन भूंजीथा:' का एक प्रमाण बैकुंठवासी नंदनंदन में प्रत्यक्ष देखने को मिला। इसे अपना परम सौभाग्य समझना चाहिए। स्मारक का विचार इसी सभा में हुआ है। जिन भाईयों ने उत्साहपूर्वक यह कार्य उठाया है उनसे यह भली प्रकार संपन्न होगा, उसमें मुझे तनिक भी शक नहीं है। अंत में मुझे बाईबल का यह वाक्य : सूई की नोक में से ऊंट निकल जाये, पर स्वर्ग के द्वार से धनवान नहीं निकल सकता, याद आ रहा है। आज सद्गति प्राप्त नंदनंदन ने उसे झूठा सिद्ध कर दिया है। जीवित रहकर जीवन की तंग घाटी में से, काजल की कोठरी में से वह बचकर बाहर निकल गये। सूई की नोक के एक अपवाद को परमात्मा अमर तथा चिरशांति प्रदान करे।

(अंधकार : प्रकाश होता है। रंगमंच पर सभागृह खाली है। प्रेक्षकगृह में से बाहर निकलते प्रेक्षक खाली कुर्सियों के पास अटके हुए शोकसभा के निमंत्रण को निर्विकार भाव से देख रहे हैं। परदा गिरता है।)

झिलमिलाती ज्योति

—कृष्णलाल श्रीधराणी

पात्र

सर अमल

नंदराय

दीपक

डाक्टर

मैना

उर्मि

(17 मई सन 1930। अंधेरी रात के आठ बजे। ग्राम देवी के मार्ग पर सर अमल देरासरी की बिल्डिंग की तीसरी मंजिल का दीवानखाना।

शीशे के झाड़फानूस में बिजली के बल्ब जल रहे हैं। उत्तर और दक्षिण की दीवारों के पास वाले कमरों में प्रवेश द्वार आमने-सामने पड़ते हैं। पूर्व की ओर छत पर जाने का छज्जा है और फिर बाग में उतरने की सीढ़ियां हैं। पश्चिम की खिड़की रास्ते में खुलती है।

कमरे के फर्श पर कश्मीरी गलीचा है। कोनों में तिपाई के ऊपर ग्रीक पुतले सजाये हुए हैं। दीवार से सटे हुए लाल मखमल के सोफे रखे हैं। बीच में एक बड़ी मेज़ है और उसके ऊपर पीतल के फूलदान में गुलाब और सूरजमुखी के थोड़े मुरझाये हुए फूल सजे हुए हैं। बगीचे से आती हुई पवन धूपबत्ती की सुगंध लेकर पश्चिम की खिड़की में से मंद गति से गुजर जाती है।

दीवारों पर गवर्नर तथा वायसराय के चित्र हैं। पश्चिम की ऊंची दीवारों पर महारानी विक्टोरिया के चोगे को उठाकर चलते हुए राजाओं का बड़ा तैल-चित्र है। उसके बहुत नीचे सोने के जड़े फ्रेम में मढ़े हुए नाइटहुड की सनद बिजली की रोशनी में चमकती है।

पश्चिम वाली खिड़की के पास एक पलंग पर आठ वर्षीय दीपक बुखार से तप रहा है। उसके माथे पर आधे कपाल को ढकते हुए सफेद पट्टी बंधी है। पट्टी में खून के धब्बे हैं। बीच के खुले भाग में से और कान के आसपास से उसके लंबे सुनहरी बालों की लटें झांक रही हैं। दीपक की माता मैना दीपक के सिरहाने के पास उसकी बंद पलकों के सामने नीची दृष्टि तथा म्लान मुख से देखती हुई बैठी है। दीपक की नौ वर्षीय बहिन उर्मि सिरहाने की दूसरी तरफ चिपक कर खड़ी है और भाई के मुख की ओर एकटक देख रही है। आसपास की कुर्सियों पर दीपक के पिता अमल देरासरी, डाक्टर, पुलिस अफसर नंदराय एवं अन्य लोग व्याकुल से बैठे हैं।

थोड़ी देर हाथ की घड़ी को देखकर डाक्टर खड़ा होता है और दीपक के सिरहाने की ओर जाता है।)

डाक्टर : मैनाजी, ज़रा थर्मामीटर निकालिए तो!

(मैना दीपक की बगल में से थर्मामीटर लेकर डाक्टर को देती है और फिर उतरे चेहरे से डाक्टर के सामने देखती है। सबकी आंखें डाक्टर की ओर हैं।)

बुखार तो बढ़ता ही जा रहा है।

(डाक्टर के मुंह पर चिंता दिखाई पड़ती है।)

सर अमल : (शुष्क स्वर में) कितना ?

डाक्टर : चार।

सब : (चौंककर) चार ?

डाक्टर : हां, बर्फ रखने की आवश्यकता है। पर माथे का घाव बहुत गहरा है इसलिए रखी नहीं जा सकती।

(सर अमल निःश्वास छोड़ता है। डाक्टर झुककर दीपक का हाथ अपने हाथ में लेता है।)

दीपक, अब तुम्हें कैसा लगता है ? सिर दुखता है ?

मैना : (दीपक के कान तक झुककर) बेटा, डाक्टर चाचा पूछते हैं कि अब तू कैसा है ? सिर का दर्द ठीक है ?

दीपक : (धीरे-धीरे आंख खोलता है) मां, सिर में बहुत दर्द हो रहा है। पर मैं ठीक हूं **(दुबारा आंखें बंद कर लेता है। क्षण भर के लिए पुनः खोलकर)** मां, उर्मि को बुलाओ ना।

मैना : उर्मि तो यहीं है बेटा। तेरे पास ही खड़ी है।

(उर्मि का हाथ पकड़कर प्यार से अपनी तरफ खींचकर गोद में बिठाते हुए सिर पर हाथ फेरती है) जब से तू गिर गया है, तब से इसके आंसू तो सूखे ही नहीं। **(उर्मि पुनः रोने लगती है और मैना के वक्ष में मुंह छुपा लेती है)**

दीपक : उर्मि, रोना नहीं, अच्छा। राष्ट्रीय-झंडा चढ़ाने के लिए मैं छत पर चढ़ा था, अचानक विचार आया कि पिताजी देख लेंगे, इस डर से जल्दी के मारे गिर पड़ा। इसमें तेरा कोई दोष नहीं।

सर अमल : राष्ट्रीय-झंडे को भूलकर थोड़ी देर के लिए चुप हो जा, दीपक।

नंदराय : राष्ट्रीय-झंडे की ही यह सारी करतूत है। हज़ारों के सिर फटे लेकिन लोगों का भूत नहीं उतरता। नेता लोग तो सब जेल में बैठकर ऊंघते हैं और ऐसे बेवकूफ इस काम में भाग लेते हैं।

दीपक : ऐसा मत कहो, नंद चाचा। जब आप ऐसा कहते हैं तो मुझे ऐसा

लगता है कि जैसे मेरे माथे की पट्टी खुल गई हो और सुबह की तरह लगातार खून बह रहा हो। (**थोड़ी देर बाद पुनः**) पर मां, जब मैं गिरा तो मैं रोया नहीं था, है ना ? मैं रोता भी क्यों ? मैं तो राष्ट्रीय-झंडा फहराता हुआ गिरा था।

सर अमल : दीपक, अब राष्ट्रीय-झंडे की बात छोड़ता है कि नहीं ? तूने पाप किया है और भगवान ने तुझे उसकी सजा भी दे दी। तू कुछ समझता क्यों नहीं ?

दीपक : राष्ट्रीय-झंडे को मैं कैसे भूलूं, पिताजी ? आंख बंद करता हूं तो मानो सारा आकाश सफेद, हरी और केसरी पट्टियों में बंट जाता है और अंदर सितारे चरखे की जगह लेते हैं। आंख खोलता हूं तो हर दीवार पर वही तीन रंग।

सर अमल : (**कड़कते हुए**) दीपक …।

डाक्टर : साहब, अब आप संभलिए। जितना आप समझते हैं, केस उससे ज्यादा गंभीर है। आपकी बातों से दीपक अधिक उत्तेजित होगा। अब तो भगवान के लिये …

मैना : (**आंखों के आंसू पोंछती हुई**) बेटा, दो घड़ी सो जा ना ?

दीपक : मां, मेरे अध्यापक कहते थे कि कोरिया में मेरे जैसे हज़ारों बच्चों ने झंडे के लिए प्राण त्याग दिये। उनके पिता उनको याद करके गौरव अनुभव करते हैं, फिर पिताजी क्यों मुझ पर बिगड़ रहे हैं ?

मैना : (**पट्टी के ऊपर हल्का हाथ फेरते हुए**) बेटा, सो जा ना।

दीपक : (**बोलता जाता है। आंखें अधिक गंभीर होती जाती हैं**) उर्मि, दोपहर में मां जब सो गई थी तब तूने आकर मुझसे कहा था पिताजी ने अपने रामा के लड़के सुंदर को मारकर बंदी बना लिया है, उसे छोड़ा कि नहीं ? (**उर्मि का हाथ पकड़ता है**) बोलती क्यों नहीं ?

उर्मि : (**डरती हुई आवाज में**) पिताजी ने उसे अभी तक नहीं छोड़ा। बल्कि पिताजी तो कहते हैं कि अब रामा को यहां से छुट्टी देनी होगी। जब से यह सुना है तब से सुंदर की मां और रामा रोते ही रहते हैं।

दीपक : (**अस्वस्थ होकर आंख बंद कर लेता है। उसकी बंद पलकों में से आंसू बहते हैं**) पिताजी, ऐसा क्यों करते हो ? मुझे यह अच्छा नहीं लगता। उसमें सुंदर का कोई दोष नहीं है। वह तो झंडा लेने ही नहीं जा रहा था। मैंने

उससे कुट्टी करने की बात कही, इसलिए वह डरता-डरता गया। उसके बाद भी उसने तो मुझे कितनी बार मना किया था। इसमें उसका दोष नहीं था। पिताजी, उसे छोड़ दीजिये। रामा को रख लीजिये। नहीं तो मैं भी··· मैं भी (**हिचकी भरकर रोने लगता है**)।

सर अमल : (दया से द्रवित होते हुए दीपक के सिरहाने जाकर माथे पर हाथ रखते हैं) बेटा, जैसा तू कहेगा, वैसा ही करूंगा, पर अब तू सो जा, दीपक।

दीपक : पिताजी, आप मेरे पास ही बैठिये ना। और तू भी उर्मि। मां अगर तुम्हें नींद आये, तब भी उठना नहीं। आज तुम सब मेरे पास ही रहो। पास ही, हां।

मैना : हम सब यहीं हैं, बेटा! तू आराम से सो जा।

दीपक : मां, मुझे नींद नहीं आती। जरा-सी झपकी लेता हूं तभी सपना आता है कि पिताजी झंडा उतारने के लिए आये हैं। चौंककर जागता हूं, फिर पिताजी को यहां देखकर शांत हो जाता हूं। उर्मि, जा, देखकर आ कि झंडा लगा हुआ है या नहीं।

सर अमल : बेटा, वह लगा हुआ है। तू अब चुप रह। अब बातें बंद कर, सब ठीक है।

दीपक : क्या कहा, पिताजी, टूटकर गिर रहा है। अपना बंगला टूटकर गिर रहा है? इसका कारण बताऊं। देखिये, आपने अपने बंगले पर राष्ट्रीय-झंडा नहीं फहराया ना, इसीलिए। अगर आप झंडा फहराएं तो वह अडिग खड़ा रहेगा।

मैना : अब सो जा, बेटा, नहीं तो तेरे सिर में दर्द हो जायेगा। (**दीपक आंख बंद कर लेता है। थोड़ी देर के लिए शांति छा जाती है। सब एक-दूसरे के सामने चिंतातुर आंखों से देखते हैं। थोड़ी देर के बाद दीपक आंखें खोलता है।**)

दीपक : उर्मि, देख नौ बजे, ठीक नौ बजे मैं घूमने जाऊंगा। अगर तुझे मेरे साथ चलना हो तो तैयार रहना। सुंदर को भी तैयार रहने के लिए कह देना, हां। (**दुबारा आंखें बंद हो जाती हैं। डाक्टर हरि-हरि करता हुआ अस्वस्थ भाव से कमरे में इधर से उधर टहलने लगता है।**)

सर अमल संयत न होने के कारण खिड़की में जाकर आंखें पोंछते हैं। मैना की आंखों में सावन-भादों की झड़ी लग गई है। दीपक थोड़ी देर के लिए आंखें खोलता है।)

मां, तू भी आयेगी ना ? पिताजी का काम नहीं है। हम जंगल में जाकर झंडा गाड़ेंगे। वहां कोई आयेगा तो संघर्ष करेंगे, अच्छा।

(पुनः आंखें बंद हो जाती हैं। उसकी सांस फूल जाती है।)

नंदराय : साहब, मैं चलूं, कुछ काम हो तो टेलीफोन कर दीजिये। आपके यहां झंडा फहरा रहा है, इसका किसी को पता भी नहीं चलने दूंगा। आप बेफिक्र रहिए। इन बेवकूफों को बहकाना मुझे खूब…।

सर अमल : **(एकाएक घूमकर)** ठीक, ठीक, नंदराय जाओ। बहुत-बहुत धन्यवाद।

(नंदराय जाता है। थोड़ी देर के लिए कोई भी नहीं बोलता। उर्मि मनौती मानती हुई कभी बाहर सर अमल की तरफ और कभी मैना की तरफ देखती है। रास्ते में दूर से जुलूस की आवाज के साथ धीरे-धीरे गीत की ध्वनि स्पष्ट होती है।)

तीस कोटि शीश नमे तुझे
भारत की ओ' धर्म-ध्वजा।
नौ लाख तेरी आशीष हमें
भारत की ओ' कर्म-ध्वजा।

दीपक : **(चौंककर जागता है)** मां, लगता है सांझ फेरी निकल रही है। मुझे खिड़की पर ले चलो। अरे, जल्दी करो। मैं सबको देखूंगा।

मैना : बेटा, तुझे कष्ट होगा। यहीं सोता रह। कल देखना ये तो कल भी निकलेंगे।

दीपक : मां, तू आज मुझे किसी भी बात के लिए मत रोक। मैं तुझे कैसे समझाऊं ? मुझे खिड़की पर ले चल।

डाक्टर : वह जैसा कहता है, वैसा करो। उसे उत्तेजित मत करो।

(सब खाट उठाकर खिड़की के पास ले जाते हैं। मैना का सहारा लेकर दीपक बैठ जाता है। नीचे से आतीहुए मशालों के प्रकाश में गीतों से उत्तेजित उसका चेहरा चमक रहा है।)

(पीछे नर-नारी बुलंद आवाज में गाते हैं।)

व्योम की लहराती पताका,
हिम पर्वत का दण्ड,

संस्कृति के जग - आंगन में
ध्वज फहराता स्वच्छंद ?

दीपक : (**मैना की आंखों में देखने के लिए अपनी आंख उठाता है**) मां, कितना प्यारा गीत है। तुझे नहीं आता ? आता हो तो गा ना ?

(**उछल कर एक चुंबन लेता है। नीचे से आती हुई लोगों की आवाज के साथ मैना का स्वर भी मिल जाता है।**)

जिस झंडे को गांधीजी ने
स्वच्छ हृदय से श्वेत किया,
जिस झंडे को भगत जती ने
रुधिर रंग से रंग दिया,
हरा शांति प्रतीक बना
भारत की ओ' धर्म-ध्वजा।

(**नीचे से बाल सेना में दीपक की जय गूंज उठती है और सब गुजर जाते हैं।**)

दीपक : मां, वो किसकी जय-जयकार कर रहे थे ?

मैना : दीपक की।

दीपक : दीपक कौन ?

मैना : तू बेटा, तूने आज झंडे को फहराते हुए सिर का बलिदान किया इसलिए सब तेरी जय-जयकार कर रहे हैं।

दीपक : मां, जो झंडा फहराता है उसकी ऐसे जय बोलते हैं ? तो तू भी फहरा ना ? मैं, उर्मि और सुंदर तीनों तेरी जय बोलेंगे।

(**मैना दीपक का एक चुंबन लेती है। दीपक थोड़ी देर के लिए आकाश में देखता है।**)

मां, देख तो सितारे आंखें मटका रहे हैं। मुझे आज नौ बजे घूमने जाना है, ये सितारे मुझे इसकी याद दिला रहे हैं। तू भी आयेगी ना।

मैना : हां बेटा !

(**पुन: थोड़ी देर के लिए आकाश की ओर ताकता है।**)

दीपक : मां, आकाश में तारे निकलते हैं तो कमरे में क्यों नहीं निकलते ? मां, बंगले पर झंडा फहराएं तो कमरे में भी तारे निकलेंगे ना।

(**मैना की आंखों से दो आंसू निकलकर दीपक की लटों में अटक जाते हैं।**)

मां, मुझे नींद आ रही है। मैं सो जाऊं पर तुझे अगर नींद आये तब भी तू यहां से उठना नहीं। ठीक नौ बजे मुझे उठा देना, अच्छा। और तुम, उर्मि और सुंदर तैयार रहना।

(मैना दीपक को सुला देती है। सर अमल पास आकर उसके माथे को थपथपाते हैं। उनकी आंखों से आंसू नहीं रुकते। दीपक फिर जागता है।)

मां, दोपहर को उर्मि कह रही थी कि पट्टी से मेरा चेहरा सुंदर लगता है। दर्पण ला ना, देखूं तो सही।

(सर अमल दर्पण लाकर दीपक के चेहरे के सामने रखते हैं। दीपक दर्पण में देखता है। उसकी आंखें चमकने लगती हैं।)

मां, पट्टी भी मानो राष्ट्रीय-झंडे जैसी लगती है। मेरे खून का लाल रंग, कपड़े का श्वेत रंग और हरे रंग के स्थान पर मेरे बाल। और चरखा तो कितनी बार पिताजी से कहा है पर लाकर ही नहीं देते। **(क्रोध से)** जाओ, ले जाओ अपना दर्पण। हमें नहीं देखना तुम्हारे दर्पण में।

(सर अमल दर्पण ले जाते हैं। थोड़े समय के लिए शांति छा जाती है। दीपक पुनः आंखें खोलता है।)

मां, मैं जब घूमने जाऊं, तब तू गांधीजी को जेल में पत्र लिखना कि दीपक घूमने गया है। और लिखना कि दीपक जहां जायेगा वहां झंडा फहराता रहेगा।

मैना : **(एक चुंबन लेकर)** हां बेटा, जरूर लिखूंगी। पर अब तू सो जा।

दीपक : हां, अब मैं सोता हूं। ठीक नौ बजे अच्छा।

(दीपक आंख बंद कर लेता है। निस्तब्धता छा जाती है। दीपक के दिल की धड़कन उखड़ने लगती है।)

सर अमल : **(पास जाकर)** लगता है सो गया।

मां : हां···पर···

(आंखों में से आंसुओं की धारा बहती है।)

डाक्टर : मैनाजी, ईश्वर पर श्रद्धा रखिये। जिसने उसे पैदा किया है, वही उसकी रक्षा करेगा।

मैना : डाक्टर, आपके पुत्र हैं ?

डाक्टर : नहीं, मैनाजी।

मैना : तो बस रहने दीजिये।

(डाक्टर चक्कर लगाने लगता है। सर अमल सिरहाने के दूसरी तरफ नीचे बैठे रहते हैं।)

यह सब आपका प्रताप है।

सर अमल : मैना, तुम्हें यह कहने का अधिकार है। पर अगर तुम मेरे मन की स्थिति जानती होती…

मैना : **(आंसू पोंछती हुई)** मेरा तो मन अब कुछ रहा ही नहीं।

सर अमल : हो सकता है, मैना।

मैना : **(रोने लगती है)** वाह रे पिता ! कैसी तटस्थता।

सर अमल : **(मन के भावों को दबाते हुए)** मैं पुरुष हूं, मैना।

मैना : और मैं मां हूं, अमल ! दीपक के बिना मुझे…

(घड़ियाल में नौ का घंटा बजता है। दीपक चौंककर जाग जाता है। सब स्तब्ध रह जाते हैं।)

दीपक : मां, नौ का घंटा बजा ना ? चलो, चलो, अब मैं घूमने चलूं। पर मां, मैंने विचार बदल दिया है। मैंने अकेले ही जाने का विचार किया है। इस मार्ग पर अकेले जाना ही अच्छा रहता है। पिताजी, उर्मि, जाता हूं, अच्छा। और मां, रात को देर से लौटूं तो राह मत देखना, अच्छा।

(थोड़ी देर बाद) और मां, गांधीजी को जेल में पत्र लिखना मत भूलना।

(दीपक आंखें बंद कर लेता है।)

मैना : बेटा, बेटा…

(उसकी आवाज फट जाती है। दीपक का शरीर ढेर हो जाता है। उर्मि रोने लगती है।)

डाक्टर : **(पास जाकर नाड़ी देखते हुए)** दीपक नहीं रहा।

सर अमल : ओह सारे संसार में अंधेरा ! अंधेरा ! ओह ! ओह, सहा नहीं जाता।

(दोनों हाथों में सिर दबाकर खिड़की से मारने लगता है। मैना की चीत्कार कमरे में गूंज जाती है। पवन की लहर दीपक की लटों और उसके हंसते चेहरे पर खेल जाती है।)

सर अमल : **(टेलीफोन के पास जाकर)** यस, वन, फोर, नॉट, सेवन।

(थोड़ी देर उपरांत।)

हां ! कांग्रेस हाउस ? हां ! आप कौन हैं ?

(सुनता है। तत्पश्चात्) स्वयंसेवक ?

हां, ज़रा शिशिर कुमार को बुलाना।

(सुनकर।)

संग्राम-समिति की मीटिंग चल रही है इसलिए वे नहीं आ सकते ? अरे, कैसे नहीं आएंगे ? कहो कि सर अमल देरासरी आवश्यक काम से दो मिनट के लिए बुला रहे हैं। जल्दी।

(टेलीफोन नीचे रखकर टहलने लगते हैं। सनद के पास जाकर एक घूंसे से उसको चूर कर देते हैं। हाथ में से खून बहने लगता है। मानों भूत चढ़ गया हो इस प्रकार दीपक के पलंग के पास जाकर खून वाले हाथ से दीपक के पांव छूते हैं। फिर उन पैरों पर सिर रखकर सिसकियों में डूब जाते हैं।)

बेटा, तूने अपने पिताजी को आज नया जन्म दिया है !

(पुनः टेलीफोन के पास जाकर एक हाथ से रूमाल से आंसू पोंछते हुए दूसरे हाथ से टेलीफोन उठाते हैं।)

हां, आप कौन ?

(सुनकर।)

शिशिर कुमार ?

शीघ्र ही शहर में सूचित कर दो कल बड़े जुलूस का नेतृत्व सर अमल देरासरी करेंगे ··· समझ गये ? धन्यवाद !

(टेलीफोन ज़ोर से रखकर दौड़ते हुए दूसरे कमरे में चले जाते हैं।)

(परदा गिरता है।)

इतिहास का एक पृष्ठ

— गुलाबदास ब्रोकर

पात्र

राव साहेब मेहता

वसंत

सरला

संतरी

(**समय** : सन 1943 की कोई भी एक दोपहर।)

(**स्थान** : बंबई की बड़ी पुलिस चौकी के सी. आई. डी. विभाग के बड़े राव साहेब मेहता के आफिस का कमरा।)

(कमरे में कचहरी जैसा फर्नीचर सजा हुआ है। परदा उठते समय राव साहेब मेहता आतुरता से किसी की प्रतीक्षा में कमरे में चक्कर लगा रहे हैं। साठ वर्ष की आयु होते हुए भी वे 45-50 की उम्र के लगते हैं। संतरी कैदी वसंत शुक्ला को लेकर कमरे में प्रवेश करता है। 24-25 वर्ष के इस तेजस्वी नौजवान को देखते ही ···।)

राव साहेब मेहता : (**मधुरता से**) ओ हो। आइए मि. शुक्ला, आइए, बैठिए (**संतरी से**) संतरी, तुम अब जाओ। बाहर ध्यान रखना।

संतरी : (**पांव से सलाम ठोक कर**) जी हां, साहब (**जाता है**)

राव साहेब मेहता : (**उसी मधुरता से**) अरे, आप बैठे नहीं, मि. शुक्ला? बैठिए इस कुर्सी पर बैठिए। (**एक मिनट बाद**) हां, आपकी व्यवस्था कैसी है? किसी प्रकार का कष्ट तो नहीं है?

वसंत : नहीं, नहीं, कष्ट कैसा? सब ठीक है, राव साहब।

राव साहेब मेहता : तब ठीक है। वैसे तो आप देख रहे हैं न यह पुलिस का धंधा? कोमल व्यक्ति भी कठोर बन जाते हैं और ये तो सामान्य मानव हैं। इनके लिए तो (**हंसते-हंसते**) खूनी और आप जैसे क्रांतिकारी सब बराबर हैं, वसंत भाई।

वसंत : जी हां, सो तो है ही।

राव साहेब मेहता : लेकिन मेरा तो इन्हें विशेष आदेश है किसी भी राज-नीतिक कैदी को, चाहे वह सत्याग्रही अहिंसक हो या त्रास···क्या कहूं? मुझे तो शब्द ही नहीं मिलते—आप जैसे क्रांतिकारी, जिसे हिंसा-अहिंसा की कोई फिकर नहीं, उन्हें तनिक भी कष्ट दिया तो दूसरे ही दिन से नौकरी गई समझना। कुछ भी हो··· (**आवाज में माधुर्य घोलते हुए धीरे से**) भारतमाता की सेवा के लिए, मुक्ति के लिए ही तो यह सब करते हो ना?

वसंत : **(हंसते हुए)** ओ हो, राव साहब, आपको भी इस 42 की हवा लग गई है क्या ?

राव साहेब मेहता : **(धीमी आवाज में)** क्यों न लगे ? हम क्या भारतवासी नहीं हैं ? **(फिर जरा जोर से)** परंतु आपके स्थान पर मैं होता तो आप जैसे साथी कभी न खोज पाता।

वसंत : आपको यह भी मालूम हो गया, राव साहब ? **(आश्चर्यपूर्वक)** कि मेरे साथी हैं ?

राव साहेब मेहता : आप पुरुष हैं, वसंत भाई, इसलिए इन साथियों को आप छुपाना चाहें यह ठीक ही है। परंतु **(धूर्त्तता से)** सामने वाले भी वैसे ही पुरुष होने चाहिए ना ?

वसंत : मतलब ?

राव साहेब मेहता : मतलब क्या ? उस नरेंद्र को चार चांटे पड़े कि सीधी तरह से सारी बात कह दी।

वसंत : **(अंजान बनते हुए)** कौन-सा नरेन्द्र ?

राव साहेब मेहता : **(हंसकर)** आप इस तरह अनजान बने रहे हैं, फिर भी नरेंद्र अपनी बातों से ही फंस गया है। अब वह बच ही नहीं सकता, वसंत भाई। देखिए, यह क्या कहती है, मैं डायरी में से ही सुनाता हूं। **(दराज खोलकर डायरी निकालता है, पृष्ठ खोजते हुए)** हां देखिए--**(पढ़ता है)** ...न...नाम नहीं बताऊंगा...गुप्त निर्देशों के अनुसार हम काम करते। वो बार-बार अच्युत, लोहिया आदि को मिलता, और सूचना के अनुसार काम करता रहता है। एक दिन...परंतु इस तरह पूरी बात मैं आपको कैसे सुनाऊं, मि. शुक्ला ? और यह एक ही नहीं है, पाध्ये, वंद्रावन सभी ने सब बातें कबूल कर ली हैं।...आपको जरा अच्छे साथी मिलने चाहिए थे।

वसंत : **(कटाक्ष से)** आपकी सहानुभूति के लिए आभारी हूं, राव साहब।

राव साहेब मेहता : भले ही व्यंग्य में कह रहे हों, फिर भी आपके साथ मेरी सहानुभूति ही है, वसंत भाई। आप तो छोटे हैं, इसलिए आपको शायद मालूम नहीं, परंतु आपकी मां और मैं बचपन से अमरेली के साथ खेले थे। फिर उनकी बाहर शादी हो गई और मैं पुलिस में फंस गया। इसीलिए परिचय न रहा और वह बेचारी चल बसी, फिर आप कहां से पहचानते ? परंतु इन कागजों में

आप कौन हैं, इसकी जानकारी मिलते ही मैंने स्वयं आपका केस अपने हाथों में ले लिया।

वसंत : राव साहब, एक विनती करूं ?

राव साहेब मेहता : खुशी से करिए न। जो कहना है कहिए। तनिक भी हिचकिचाहट या संकोच मत कीजिए। हम दोनों की बातें हम दोनों के अतिरिक्त तीसरा कोई भी ···

वसंत : (मुस्कुराते हुए) धन्यवाद, परंतु मुझे कुछ ऐसा विशेष नहीं कहना है।

राव साहेब मेहता : जो भी कहना है वह कहिए ना।

वसंत : देखिए आप तो बुजुर्ग हैं और इसके साथ स्नेही भी निकले, इसीलिए आपसे क्या कहूं ? फिर भी एक बात बता ही दूं। यहां हम संबंधियों की तरह नहीं मिले। आप राज्य के अधिकारी हैं और मैं राज्य का अपराधी। अपने निजी स्नेह को हम कर्तव्य के बीच न लायें तो अच्छा है। आप अपना कर्तव्य कीजिये और मैं जैसा मुझे जंचेगा वैसा करूंगा।

राव साहेब मेहता : शाबाश, वसंत भाई, आपके विषय में मैंने जैसा सुना, वैसा ही पाया। किंतु यह मामला इतना गंभीर है कि निजी संबंध आये बिना रह नहीं सकता।

वसंत : मेरे लिए कुछ भी गंभीर नहीं है। अगस्त की घोषणा हो गई। महात्माजी को सरकार ने बिना चेतावनी के पकड़ लिया। देश ने सत्याग्रह शुरू किया। हमारे जैसे नौजवान उसमें शामिल हुए। जैसे सूझा वैसे ही सरकार का प्रतिरोध करने लगे। और उसके परिणामस्वरूप आज यहां बैठे हुए हैं। हज़ारों ने ऐसा किया है, हज़ारों पकड़े गये हैं, हज़ारों सजा भुगत रहे हैं। मैं भी भुगतूंगा। इसमें गंभीरता की क्या बात है ?

राव साहेब मेहता : इसमें कुछ भी गंभीर नहीं है, यह आप कह रहे हैं, मि. शुक्ला। पर मैं भी जानता हूं और आप भी जानते हैं कि जो बात आप कह रहे हैं, वह इतनी सरल नहीं है।

वसंत : नहीं, मुझे तो मालूम नहीं ?

राव साहेब मेहता : जो व्यक्ति पूरी योजना तैयार करता है और उसे चलाता है उसे इतना भी नहीं मालूम ?

वसंत : मुझे जो मालूम है वह मैंने आपको बता दिया। हां महात्माजी के आदेशानुसार भी इस योजना को गुप्त नहीं रखना चाहिए था।

राव साहेब मेहता : (जोश में) और बम बनाकर निर्दोष सैनिक और नागरिकों को जीवन से मुक्ति दिलानी चाहिए थी, क्यों मि. शुक्ला ?

वसंत : ओ हो ! आप उस धमाके की बात कर रहे हैं ?

राव साहेब मेहता : क्यों ? आप इस विषय में कुछ नहीं जानते ?

वसंत : मैं कैसे जान सकता हूं ?

राव साहेब मेहता : बताऊं ? 22 दिसंबर 1942 के दिन बम गिरा था। दस सैनिक मारे जाते हैं। दस-बारह नागरिक एवं सैनिक घायल हैं। इक्कीसवीं को पाध्ये के यहां सभा होती है और उसमें तुषार किस प्रकार बम फेंके और बड़ा वृंदावन कहां खड़ा-खड़ा देखता रहे और चेतावनी देने के लिए कौन-सा इशारा करे, इसकी व्यवस्था होती है। इससे पहले बीसवीं तक पाध्ये द्वारा निर्धारित स्थान पर बम बनाने की व्यवस्था होती है। इस व्यवस्था के आरंभ में—तीसरी ही होगी, केशव का हाथ टूट जाता है और उस टोली के डा. देसाई उसकी देखभाल करते हैं। पंद्रहवीं तिथि की रात नौ बजे…

वसंत : (मजाक करते हुए) आप तो ऐसे बोल रहे हैं जैसे पाठ रट रखा हो राव साहब।

राव साहेब मेहता : (हंसकर) सचमुच, यह पूरा पाठ मुझे कंठस्थ हो गया है, वसंत भाई। (गंभीर होते हुए) बार-बार मुझे यह कंठस्थ करना पड़ा है। इसे कंठस्थ कराने वालों के चेहरे भिन्न-भिन्न होते हैं परंतु पाठ एक ही होता है। मेरे गुरु हैं—पाध्ये, वृंदावन, तुषार, नरेंद्र कितने नाम गिनवाऊं ? बोलो।

वसंत : आपको गुरु भी अच्छे मिले।

राव साहेब मेहता : हां, यह तो ठीक है। इसीलिए उनके गुरु को जानने की मेरी जिज्ञासा बढ़ गई है। सब एक स्वर में अपने गुरु की प्रशंसा करते नहीं थकते।

वसंत : जो सबको मात दे गया, वह कोई शक्तिशाली व्यक्ति होगा।

राव साहेब मेहता : हां ! इसीलिए तो मुझे उसकी तलाश है।

वसंत : तब तो वह भाग्यशाली होगा, राव साहब।

राव साहेब मेहता : मैं उसे भाग्यशाली नहीं कहूंगा अन्यथा उसे ऐसे कायर

साथी न मिलते। पर उस्ताद अवश्य है--गजब का उस्ताद। सब कहते हैं कि और सब तो अंग-उपअंग थे मस्तिष्क तो केवल इस गुरु का ही था। इस मस्तिष्क की प्रशंसा करते वे थकते नहीं।

वसंत : **(तिरस्कारपूर्ण)** अच्छा, ऐसा ?

राव साहेब मेहता : देखिए वसंत भाई, इतने से आप जान गये होंगे कि जहां तक इस घटना का संबंध है, इसके विषय में मैं रत्ती-रत्ती जानता हूं। किसने क्या बात की, किसने किस दिन क्या वेश धारण किया, इन सबका विवरण मेरे पास है। इसलिए इस विषय में हम सब साफ-साफ बात करें। तुम्हारे जो साथी अपनी जान देने को तैयार हैं, उन्हें तो तुम नहीं बचा सकते। पर अपनी जान को…

वसंत : **(गौरवपूर्वक)** राव साहेब मेहता, ऐसे कार्यों में मनुष्य क्या अपनी जान बचाने के लिए भाग जाता है ?

राव साहेब मेहता : **(जोर से हंसते हुए)** कैसी बात करते हैं आप, मि. शुक्ला ? ऐसा ही होता है वरना पाध्ये, वृंदावन आदि क्यों भाग जाते ? **(गंभीर होते हुए)** देखिए, आपका जीवन बचाने के लिए मैं कोई लालच नहीं देता। यह न मुझे शोभा देता है, न आपको। इन नामर्दों के साथ में आप जैसे मर्द को मिलाना नहीं चाहता। यह सब तो मैं अपने-आप कर लूंगा। केवल एक विषय में ही मुझे आपकी सहायता की ज़रूरत है।

वसंत : **(हंसकर)** मज़ाक करते हैं, राव साहब ? कहां मैं छोटा-सा कैदी और कहां आप इस संस्था के सर्वसत्ताधीश प्रतिनिधि ? मैं आपकी क्या सहायता कर सकता हूं ?

राव साहेब मेहता : इस बात का बम और क्रांतिकारियों से कोई संबंध नहीं है। मैंने कहा था न कि इस विषय में मैं तुमसे कुछ कहना ही नहीं चाहता। मुझे तो इस सत्याग्रह के संबंध में ही बात करनी है।

वसंत : ओ हो ? …हां कीजिए ना।

राव साहेब मेहता : तुम इतनी छोटी-सी उम्र में ही कितना आगे बढ़ गये हो, यह मैं जानता हूं। तुम्हें देखकर मुझे अपने बचपन की स्वप्निल भावनाओं की याद आती है। कहां वे सुनहरे स्वप्न और कहां ये पुलिसगिरी की माथा-पच्ची। देश नेताओं के संपर्क में तुम्हारी तो मौज है और हमें निरंतर देशद्रोह करते रहना पड़ता है।

वसंत : **(सचेष्ट होकर)** देश नेताओं के संपर्क में मेरे जैसा छोटा व्यक्ति क्या मौज कर सकता है, राव साहब ? वे तो हमें पहचानते भी नहीं ।

राव साहेब मेहता : महात्माजी या जवाहर कहां से पहचानेंगे ? पर अब तो अच्युत, लोहिया और अरुण का बोलबाला है और उनका विश्वास तुम्हें मिला हुआ है। यह भी क्या कम भाग्य है ?

वसंत : मेरे विचार में तो वो भी गांधीजी या नेहरूजी जैसे ही महत्त्वपूर्ण हैं। उनका विश्वास तो दूर रहा, उनसे जान-पहचान हो जाये, तब भी धन्यभाग्य है ।

राव साहेब मेहता : यानि तुम यह कहना चाहते हो कि तुम उन्हें पहचानते भी नहीं ?

वसंत : नहीं, ऐसा तो नहीं । मैं उन्हें खूब पहचानता हूं, उनके प्रति पूज्य-भाव रखता हूं । मेरी जान-पहचान केवल एक-पक्षीय है, मैं इतना ही कहना चाहता हूं ।

राव साहेब मेहता : तुम उन्हें केवल जानते ही नहीं हो वरन् दूसरे गांवों से आये लोगों की अच्युत के साथ भेंट करवाने वाले नेता भी तुम ही थे । दिल्ली से 15 नवंबर को लाला रामचरण आये, उन्हें रात्रि के नौ बजे तुम अच्युत के पास ले गये । 18 तारीख की दोपहर तुमने ···

वसंत : **(हंसकर)** यह भी पाठ कंठस्थ है, राव साहेब ?

राव साहेब मेहता : तुम जैसे लोग भी झूठ बोलते हो तो मैं कितना कुछ जानता हूं यह बताने की आवश्यकता नहीं । मुझे तुमसे उन लोगों के विषय में जानना है। उस बम के केस को सुनकर मैं तुम्हें उसमें फंसाऊंगा नहीं, मेरा वचन है ।

वसंत : आपका आभारी हूं, राव साहब ! लेकिन मुझे रिश्वत लेनी या देनी नहीं आती । तब मैं क्या उत्तर दूं ?

राव साहेब मेहता : देखो भाई, तुम बच्चे हो और मुझे दुनिया का थोड़ा-बहुत अनुभव है । इस विषय में हठ मत करो। यह जीवन का प्रश्न है । और जीवन किसे प्यारा नहीं होता ? उसे ऐसे-वैसे नहीं फेंका जाता ।

वसंत : बिलकुल सच बात है ।

राव साहेब मेहता : **(पुनः प्यार से)** इसीलिए तो मैं कहता हूं न भाई । तुम अच्युत से मिले हो या नहीं ?

वसंत : मैं कब कहता हूं कि नहीं मिला ? मिला हूं।

राव साहेब मेहता : (**आशापूर्वक**) हूं, अब ठीक। **कहां मिले थे ? कब ? किसलिए ?**

वसंत : अंतिम प्रश्न का उत्तर पहले देता हूं। **मुझे सत्याग्रही स्वयंसेवकों** की सूची तैयार करने का काम सौंपा गया। **इसी विषय में वृत्तांत प्राप्त करने के** लिए मुझे डेढ़-दो महीने पहले बुलाया था।

राव साहेब मेहता : भेंट कहां हुई थी ?

वसंत : पुरोहित के होटल में।

राव साहेब मेहता : (**गुस्से से**) यह क्या मज़ाक है, मि. शुक्ला ? **मुझे बनाते** हो ? अच्युत जैसा व्यक्ति, जिसे ढूंढ़ने के लिए सारे हिंदुस्तान की पुलिस शक्ति खून का पानी कर रही है वह एक मामूली से काम की सूचना देने इतना बड़ा खतरा लेकर इतनी खुली जगह में आयेगा ?

वसंत : (**दृढ़**) हां, आये थे।

राव साहेब मेहता : (**उसी गुस्से से**) कैसे मालूम ?

वसंत : क्योंकि वो आये थे।

राव साहेब मेहता : पर तुम्हारी भी बुद्धि है कि नहीं, शुक्ला ? कैसी बेकार बातें करते हो। अपना बेहूदापन तुम नहीं समझते ? तुम मेरी जगह होते तो ऐसी बात मानते ? वे किसलिए आए थे ?

वसंत : देखिए राव साहब, मैं तो एक छोटा सिपाही हूं। मेरे अधिकारी किसलिए यह सब करते हैं, यह जानना मेरा काम नहीं। मेरा काम उनके आदेश का पालन करना है।

राव साहेब मेहता : (**गुस्से से**) ठीक (**घंटी बजाता है**) संतरी, कैदी को ले जाओ। मैं फिर बुलाऊं, तब ले आना।

संतरी : जी हां, सरकार (**वसंत और संतरी जाते हैं**)

राव साहेब मेहता : बच्चू ऐसे नहीं मानेगा। उस चाची को देखते ही ठिकाने आ जायेगा। जैसे-तैसे वह ठिकाने आई है। नहीं तो वह भी क्या कम थी ? (**घंटी बजाता है**) उस लड़की को ले आओ।

(**संतरी एक 22 वर्ष की युवती के साथ आता है। उस युवती के चेहरे पर घबराहट होते हुए भी वह सुंदर और आकर्षक लगती है। उसे देखकर**) आइए,

आइए सरला देवी, आइए बैठिए, यहीं इस कुर्सी पर बैठिए।

सरला : जी हां।

राव साहेब मेहता : देखिए सरला देवी, ऐसा है··· (**हंसते हुए**) पर तुम तो सब जानती हो इसलिए तुमसे अधिक क्या कहूं ?

सरला : (**उत्सुकता से**) वसंत से मिले आप, राव साहब ?

राव साहेब मेहता : मिले बिना छुटकारा कहां ? ये धंधा भी ऐसा सिर खपाता है···मैं सोचता हूं कि आपको कष्ट न दूं···पर वह यूं ही मान जानेवाला थोड़े ही है।

सरला : (**श्रावाज देते हुए**) क्या कहा उसने ?

राव साहेब मेहता : (**हंसकर**) वह तो कहता है कि वह पुरोहित के होटल में अच्युत से एक बार सूचना लेने के लिए मिला था।

सरला : (**हंसकर**) वह बात का पक्का है। मालूम नहीं क्या-क्या सूझता है उसे ?

राव साहेब मेहता : वो तो है ही, सरलाजी। पर यह समय हंसने का नहीं। उसके जीवन पर कितना बड़ा खतरा लटका हुआ है, यह वह भूल जाता है।

सरला : (**विनती के स्वर में**) पर उसमें आप उन्हें तो नहीं लपेट रहे ना, राव साहब ?

राव साहेब मेहता : मैं तो यही प्रयत्न करूंगा। पर वह माने तब ना। मैंने उसे यह भी कहा तो उसने बात ही उड़ा दी।

सरला : (**घबराकर**) फिर क्या होगा, राव साहब ?

राव साहेब मेहता : (**हिम्मत देता हुश्रा**) कुछ नहीं होने वाला, बस तुम ज़रा पक्की हो जाओ।

सरला : (**ढीली पड़कर**) मेरी हिम्मत नहीं होती, मेहता साहब।

राव साहेब मेहता : ऐसे ढीली पड़ने से कैसे चलेगा, सरलाजी ? मैंने तुम्हें डायरी नहीं दिखाई ? उसके साथियों ने सब कबूल कर लिया है। सब उसे नेता की तरह मानते हैं। उस केस में···सजा तो···फांसी की ही···

सरला : (**दुखी होती हुई**) ना, ना, राव साहब···

राव साहेब मेहता : (**स्नेह से**) घबराइए नहीं। आपके स्नेह के पात्र लोगों को मौत के मुंह से भी वापस ले आऊंगा। ऐसे ही आपके पिता के साथ इतनी धूल

नहीं फांकी (**याद करते हुए**) कस्तूरचंद और मैं लंगोटिया यार थे। सारा दिन साथ-साथ। गोधरा की गली-गली में अब भी हमारे पांव के निशान होंगे। मैंने और उसने व्यापार शुरू किया लेकिन फिर छोड़ दिया। वह बेचारा भरी जवानी में चल बसा ? इसलिए तुम सब लोगों को हमारी पुरानी दोस्ती का क्या पता ? खानदेश में मेरी नौकरी लग गयी इसीलिए तुम्हारी मां से भी परिचय नहीं हुआ। लेकिन (**पुनः सचेष्ट होकर**) कस्तूर की बेटी पर मेरे होते हुए दुख नहीं आ सकता। तुम तो मेरी भी बेटी हो ? घबराओ मत बेटी।

सरला : (**हिचकी लेती हुई**) घबराती नहीं, राव साहब। पर वो कल्पना मुझसे नहीं सही जाती।

राव साहेब मेहता : इसीलिए तो मैंने तुम्हें मार्ग दिखाया है ना, बेटी ? और उसमें से मैंने तुम्हें उभार लेने का हर संभव प्रयत्न किया है। पर वह पागल माने तब ना ?

सरला : (**ढीली पड़ती हुई**) पर···पर··· राव साहब···

राव साहेब मेहता : (**भावपूर्वक**) इसमें इतना घबराती क्यों हो, सरला ? तुम्हें तो केवल इतना ही कहना है कि वह अच्युत के संपर्क में बार-बार आया, यह मुझे मालूम है। और कुछ नहीं। तुमसे कुछ विशेष थोड़े ही कहलवाना है या देशद्रोह करवाना है ?

सरला : (**स्वयं से कहती हुई-सी**) ठीक ही तो है, मैं और कुछ जानती भी नहीं ? नहीं तो उसे बचाने के लिए मैं क्या न कर बैठती ?

राव साहेब मेहता : प्रेम ऐसी ही चीज़ है। पर जो मैंने तुम्हें कहा है, वह भी कहने की जरूरत नहीं पड़ेगी। तुम्हें देखते ही वह अपने-आप कबूल कर लेगा और इस प्रकार उसकी ज़िन्दगी बच जायेगी और···और··· सरला, फिर ज़िन्दगी किसे प्यारी नहीं होती ?

सरला : सो तो है ही। पर राव साहब, आप वसंत को नहीं जानते। वो झुक जाये यह उसका स्वभाव नहीं है।

राव साहेब मेहता : पर इसमें ऐसी कोई बात ही नहीं, बेटी। अच्युत से मिलना कोई इतना बड़ा गुनाह नहीं है और कहां मिले कहां नहीं, इतना बताने में क्या है ? अच्युत तो अब कहीं का कहीं पहुंच चुका होगा। इससे उसके पकड़े जाने की संभावना भी नहीं। फिर क्या घबराना ? तुम्हें तो वैसे भी घबराना नहीं चाहिए।

तुम तो जिसे चाहती हो उसकी ज़िन्दगी बचाने के लिए ही यह सब कर रही हो। इसमें तुम्हारा कुछ भी स्वार्थ नहीं है। और जो हो वह आज ही हो जाना चाहिए। एक बार मेरे हाथों से यह बात गयी तो फिर वसंत और फांसी के बीच मैं भी खड़ा नहीं रह सकता।

सरला : (**आवेगपूर्वक**) ऐसा मत कहिए, राव साहब, ऐसा मत कहिए। उनकी ज़िन्दगी बचाने के लिए जो आप कहेंगे, वही करूंगी। (**रोते-रोते**) फिर ऐसा करने से भले ही ये मुझसे विमुख हो जायें।

राव साहेब मेहता : कोई विमुख नहीं होगा बेटी, कोई विमुख नहीं होगा। उल्टे यह सब समाप्त होने पर वह तुम्हारा सदा ऋणी रहेगा।

सरला : (**अपनी उसी धुन में**) भले ही वे मुझे त्याग दें, लेकिन उन्हें कुछ हो जाये यह मुझसे सहन नहीं होगा। (**हिचकी लेती है।**)

राव साहेब मेहता : कुछ नहीं होगा, बेटी, तुम स्वस्थ रहो।

सरला : (**विनती करते हुए**) आपके पांव पड़ती हूं, राव साहब। लेकिन कुछ भी हो मेरा वसंत मुझको छोड़ न दे, वरना मेरे जीवन में कुछ नहीं बचेगा।

राव साहेब मेहता : शांत हो जाओ बेटी, हिम्मत रक्खो। लो पानी पियो। तुम्हारी ज़रूरत पड़ेगी तो फिर बुला लूंगा। इतने में तुम स्वस्थ हो जाओ। उसके सामने तुम ऐसे हिम्मत गंवाओगी तो उसे अच्छा नहीं लगेगा। जाओ अपने को संभालो। (**आवाज़ देता है**) संतरी…।

संतरी : (**आकर**) जी हां सरकार।

राव साहेब मेहता : इन्हें पास के कमरे में बिठाओ। मैं बुलाऊं तब ले आना।

संतरी : जो हुक्म सरकार।

राव साहेब मेहता : जाओ बेटी ! भगवान करेगा तो तुम्हें बुलाने की ज़रूरत ही नहीं पड़ेगी।

सरला : अच्छा (**जाती है।**)

राव साहेब मेहता : (**तेज़ आवाज़ में**) वसंत शुक्ला को यहां भेज दो। (**फिर धीरे से स्वगत**) अच्युत अथवा लोहिया हाथ आ जाये तो बेड़ा पार हो जाये। राव साहब से सर-नाईट हो जाऊं… फिर बम के चक्कर में ये बेटे कहां जायेंगे। (**विचारता हुआ**) बाकी सब पत्थर हैं—कगार जैसे। वो तो मैं देख लूंगा।

(वसंत शुक्ल आता है।)

ओ हो ! आइए वसंत भाई। बैठिए, इस कुर्सी पर बैठिए। **(लाने वाले को)** तुम जाओ। **(वसंत से)** सिगरेट लोगे ?

वसंत : नहीं, धन्यवाद !

राव साहेब मेहता : पीते नहीं ?

वसंत : कभी पी होगी, पर विशेष आदत नहीं।

राव साहेब मेहता : **(प्रेम से)** तो लो न। अब मैं किसी अधिकारी की तरह तुमसे बात करना नहीं चाहता।

वसंत : **(चौंकता हुआ-सा)** तब ?

राव साहेब मेहता : तुम्हारे कुटुम्ब के एक स्नेही के नाते··· उस समय तो तुम भी आपे के बाहर हो गये थे और मुझे भी कामकाज की बातें करनी थीं। इसीलिए निजी सम्बन्ध बीच में लाना मुझे उचित नहीं लगा। अब एकांत में कुछ खास बातें कर लें, फिर तुम्हें जाने दूंगा।

वसंत : पुलिस विभाग में आप जैसा स्नेही हृदय हो सकता है, यह देखकर आनन्द होता है राव साहब।

राव साहेब मेहता : स्नेही हृदय किस विभाग में नहीं होता ? जब आप इतना बड़ा युद्ध लड़ने, जान-जोखम में डालने निकले हैं तो हमारे जैसे स्नेही हृदय तो आपके साथ रहेंगे ही न ?

वसंत : मतलब ?

राव साहेब मेहता : **(हंसकर)** मुझे पता लग गया है, वसंत भाई ! लड़की तो आपने अच्छी पसंद की है। बंबई शहर में सरला मारफतिया-सी स्नेही, समझदार और सरल लड़की मिलनी मुश्किल है।

वसंत : (हंसकर) उसे भी जानते हो, राव साहब ?

राव साहेब मेहता : धन्धा ही ऐसा है कि सबको जानना ही पड़ता है···पर हां, वसंत भाई, शादी कब करने का विचार है ?

वसंत : **(मजाक में)** आप मुझे यहां से कब छोड़ना चाहते हैं ?

राव साहेब मेहता : मेरा वश चले तो अभी ही···।

वसंत : तो मैं भी अभी शादी करने को तैयार हूं।

राव साहेब मेहता : यह तो आपके ही हाथ में है न ? आप चाहें तो···

वसंत : आप फिर राजनीति की बातों पर आ गये, राव साहब। जबकि, हमें तो निजी बातें ही करनी थी न ?

राव साहेब मेहता : वह बेचारी कितनी चिन्ता करती होगी, जानते हो ?

वसंत : किस की चिन्ता करती है ?

राव साहेब मेहता : आपकी।

वसंत : मेरी चिन्ता करती है ? किस लिए ?

राव साहेब मेहता : किस लिए क्यों ? अपने प्रेमी के सिर पर तलवार लटकती देखकर किस स्त्री को चिन्ता नहीं होगी ?

वसंत : कोई समझदार स्त्री ऐसा नहीं करेगी, जिसे अपने कर्तव्य का ज्ञान हो और···और···।

राव साहेब मेहता : रुक क्यों गये ? बोलो न, वसंत भाई।

वसंत : और अपने साथी के प्रति पूर्ण प्रेम हो।

राव साहेब मेहता : पर वह क्या करे ?

वसंत : जो उसे सूझे वो करे और प्रतीक्षा करे।

राव साहेब मेहता : कितनी प्रतीक्षा करे ?

वसंत : जब तक कोई वापस आये, तब तक तो जरूर ही।

राव साहेब मेहता : पर···माफ करना, यह ऐसे ही बात की बात में पूछता हूं···अगर वह वापस ही न आये तो ?

वसंत : **(उत्साह से)** तो, तो उस स्त्री के हृदय में उस साथी की स्मृति सदा के लिए बस जायें। फिर उसके लिए वियोग या प्रतीक्षा कहां रही ? तब तो उस स्मृति के स्थिर प्रकाश में केवल कर्तव्य ही निभाना होगा।

राव साहेब मेहता : यदि इससे भिन्न कर्तव्य सूझे तब ?

वसंत : भिन्न कर्तव्य क्या हो सकता है ?

राव साहेब मेहता : अपने प्रियतम का जीवन बचाना।

वसंत : **(तिरस्कृत भाव से)** जीवन, जीवन का मूल्य है ? क्या कीमत ? किस लिए इस जीवन को बचाकर रखें ? सच्ची चाहने वाली स्त्री ऐसा कभी नहीं करेगी ?

राव साहेब मेहता : पर इसमें अगर कोई त्याग ही न हो तो ? अपना साथी गलत मार्ग पर जा रहा है और अपना जीवन बरबाद कर रहा है तो कोई भी स्त्री···।

वसंत : किसी भी स्त्री से मुझे क्या ? मैं जिसे चाहता हूं वह स्त्री कभी ऐसा नहीं करेगी। मैं उसे अच्छी तरह जानता हूं।

राव साहेब मेहता : पर वसंत भाई, इसमें तो किसी को कुछ करना ही नहीं है। अच्युत को खोज निकालने के लिए सरकार दृढ़ संकल्प लिये बैठी है। आप कहां मिले थे, अगर यह बता दें तब भी इतने दिन बाद पुलिस को उनका पता नहीं लगेगा। क्यों बेकार की···

वसंत : यह तो फिर आप राजनीति की बातों में आ गये, राव साहब।

राव साहेब मेहता : इसके अतिरिक्त छुटकारा ही नहीं। इतनी सुन्दर ज़िन्दगी को बेकार होम होते हुए मैं नहीं देख सकता और उस कोमल सरला के लिए तो बिलकुल नहीं।

वसंत : उसकी चिन्ता आप रहने दीजिए, मेहता साहब। उसे अपनी चिन्ता करनी आती है।

राव साहेब मेहता : क्या आती है। बेचारी रो-रोकर मरी जा रही है।

वसंत : अब यह हथियार मुझ पर चलने लगे ? मैं सरला को जानता हूं। मैं झुक सकता हूं, पर वह कभी नहीं झुक सकती।

राव साहेब मेहता : मैं भी जानता हूं, वह झुक नहीं सकती। वह आपकी अपेक्षा अधिक दृढ़ है। पर अगर मेरी तरह उसको भी यह लगे कि आप बेकार ज़िद कर रहे हैं तो वह आपको ज़िद छोड़ने के लिए कहेगी या नहीं ?

वसंत : उसे ऐसा कुछ नहीं लगेगा।

राव साहेब मेहता : क्यों ? (**घंटी को बजाता है, फिर तुरंत**) उन देवीजी को भेजो।

वसंत : उसे भी यहीं बुलाया है ?

राव साहेब मेहता : देखो वह क्या कहती है ? (**सरला आती है**) सरलाजी, यही वसंत शुक्ल हैं न ?

सरला : (**धीमे स्वर में**) जी हां।

राव साहेब मेहता : ये अच्युत से बार-बार मिले ?

सरला : (**पुनः धीरे से**) जी हां।

राव साहेब मेहता : ठीक मालूम है ?

सरला : जी हां।

राव साहेब मेहता : इन्हें बात कबूलवाने के लिए समझा सकोगी ?

सरला : **(रोते स्वर में)** वसंत··· यह बात कबूल करने में···

वसंत : **(रूखी आवाज में सरला से)** आप किससे कह रही हैं ?

सरला : **(आश्चर्यपूर्वक)** तुमसे, क्यों ?

वसंत : **(उसी स्वर में)** मैं इन देवीजी को नहीं जानता।

सरला : **(चीखते हुए)** वसंत···तुम मुझे···प्रियतम··· **(दौड़कर उसके पास जाने लगती है।)**

वसंत : **(आदेश देता हुआ)** दूर रहो, मुझसे दूर रहो। मुझे छूकर अपवित्र मत करो।

राव साहेब मेहता : क्या पागलपन करते हो, मि. शुक्ला? इस सरला मारफतिया को आप नहीं जानते ?

वसंत : बिलकुल नहीं जानता, बिलकुल नहीं, राव साहब। इस नाम की दूसरी स्त्री को मैं जानता हूं, चाहता हूं। उसके लिए प्राण दे सकता हूं। जिसके विषय में आपसे बात की थी वह तो···वह तो··· **(गला भर आता है, उसे साफ करके)** वह तो मर गयी।

सरला : **(जोर से रोते-रोते)** वसंत···ओ भगवान··· **(जमीन पर गिर जाती है।)**

राव साहेब मेहता : **(घंटी बजाता हुआ आवाज देता है)** जल्दी डाक्टर को बुलाओ। कैदी को ले जाओ। चलो जल्दी···जल्दी। **(संतरी आदि की भीड़ इकट्ठी हो जाती है···यहीं परदा गिरता है।)**

मुक्ति-प्रसून

—शिवकुमार जोशी

पात्र

कल्याणी
मि. मुकर्जी
नत्थूसिंह
मि. सेन
जज घोषाल
मि. बोझ
मि. चटर्जी
धीरज
सच्चित
अन्य

(इस नाटक के लिए मंच दो भागों में विभाजित होगा--अग्र भाग सामान्य है, तथा आधे से अधिक स्थान छोड़कर पृष्ठभाग साढ़े चार से पांच फुट ऊंचा उठा हुआ है। स्टेज का यह दूसरा भाग भी भिन्न प्रकाश तथा परदों से सुसज्जित है। प्रथम अंक में मंच के अग्र भाग के साथ-साथ पृष्ठ भाग भी खुला हुआ है। पृष्ठ भाग में एक सामान्य बैठक—दीवानखाना सजा हुआ है। बीच में सोफासेट तथा आसपास दो कुर्सियां हैं। बीच में बेकार दिखने वाली एक मेज, पीछे की दीवार में एक द्वार तथा जालीदार एक बड़ी खिड़की है। खिड़की के पास एक छोटी तिपाई पर टेलीफोन रखा है।

परदा उठने से पूर्व एक प्रकार के तनावपूर्ण वातावरण की सूचना देने वाला पार्श्व संगीत। इस संगीत के तीव्र होने पर परदा उठता है। इसी समय मंच पर रिवाल्वर के तीन फायर सुनाई देते हैं। अंधेरे में दीवानखाने से 'ओ बाप रे मर गया' की मर्मस्पर्शी आवाज आती है। कोई गिरकर ढेर हो जाता है। अब मद्धम प्रकाश आने लगता है। मेज और सोफे के बीच पुलिस अफसर की वर्दी में एक युवक मरा हुआ दिखाई देता है। उसकी वर्दी की पेटी आदि सोफे पर पड़ी है। प्रकाश एक के बाद एक वस्तु पर पड़ता हुआ अंत में हाथ में रिवाल्वर लेकर कुर्सी के पीछे सहारा लिए खड़ी हुई उग्र स्वभाव वाली एक युवती पर स्थिर होता है और तत्पश्चात सारा मंच मद्धम प्रकाश से रोशन हो जाता है।)

कल्याणी : आह! तेरे लिए जो ठीक था वही हुआ **(घबराहट में एक-दो चक्कर लगा कर, कुछ सोचकर रुकती है और टेलीफोन के पास जाकर नम्बर मांगते हुए)** कलकत्ता, वन, डबल जीरो, वन। यैस, प्लीज···हल्लो। कहां से बोल रहे हैं? लाल बाज़ार पुलिस स्टेशन से? ज़रा आफिसर इंचार्ज को फोन देंगे? ···हल्लो आफिसर! ··· आप कौन ?—सब इंस्पेक्टर मि. मुकर्जी? हां, देखिये, मैं कल्याणी, कल्याणी मजूमदार···मैं बाऊ बाज़ार और चितरंजन एवेन्यू के क्रासिंग के पास निर्मल लोहिया गली के मकान नं. 12 से बोल रही हूं—आप यहीं आयेंगे? ··· हां बहुत जरूरी काम है। हां, अभी ही··· यहां एक खून हुआ है। खून··· हां, हां, खून···खूनी? खूनी यहीं हाजिर है, मैं खुद ही ··· मैं ··· मैं कल्याणी खुद ही। प्लीस स्टार्ट इमिजिएटली।

(रिसीवर स्टैंड पर रखकर निढाल होकर कुर्सी पर गिर जाती है । कुछ समय के लिए मृत व्यक्ति पर तिरस्कृत दृष्टि डालती है। इतने में बाहर सीढ़ी से चढ़कर आदमी ऊपर आते हुए प्रतीत होते हैं। बाहर उत्तेजना, आश्चर्य और घबराहट का वातावरण हो जाता है।)

एक आदमी : **(बाहर से)** इसी--इसी कमरे से पिस्तौल की आवाज़ आयी थी।

दूसरा आदमी : अंदर कौन होगा ?

तीसरा आदमी : **(दरवाज़ा खटखटाते हुए)** ए, दरवाज़ा खोलो, दरवाज़ा खोलो।

(उत्तेजना में चक्कर लगाती हुई कल्याणी तिरस्कृत भाव से हंसती है।)

कल्याणी : हूं, अब आ पहुंची—कायरों की टोली··· **(बाहर से आती हुई आवाज़ें)** कौन है अंदर ? अवश्य कोई चोर-डाकू घुस गया होगा। **(एक साथ)** दरवाज़ा खोलो। दरवाज़ा खोलो।

एक आदमी : अरे, खिड़की से कूदकर न भाग जाये। चारों ओर से घेर लो।

(बंद खिड़की खोलने की कोशिश करते हैं।)

दूसरा आदमी : पुलिस को खबर दो, पुलिस को···

कल्याणी : **(अंदर से थोड़ा सा दरवाज़ा खोलकर, हाथ में रिवाल्वर लिए आदमियों के सामने खड़ी होती है)** कोई जरूरत नहीं। मैंने खबर कर दी है। चले जाओ यहां से, यहां किसी का काम नहीं।

समूह में से एक : बाप रे! साक्षात् चंडी।

कल्याणी : चंडी ही हूं, खबरदार, कोई आगे आया तो।

समूह में से : अरे डरते क्यों हो ? देखो तो अंदर क्या है ?

कल्याणी : देखने लायक कुछ नहीं है, देखो। वह सज्जन--

(जैसे ही दरवाज़ा खोलती है, चार-पांच लोग अंदर घुस आते हैं।)

एक आदमी : **(चीखकर भागता है)** ए मां! खून! खून!

(बाहर क्या है ? क्या है ? की आवाज़ें आती हैं।)

दूसरा आदमी : ए मां दुर्गा! रक्षा करो! रक्षा करो! रक्षा करो!

(बोलता हुआ जैसे अंदर आया था वैसे ही बाहर चला जाता है।)

तीसरा आदमी : झगड़ा! खून! खून!

(समूह के बराबर सामने के स्टेज के दूसरे कोने पर कल्याणी स्थिर खड़ी हो जाती है। अंदर आये हुए आदमियों से बातचीत आरंभ हो जाती है। बाहर के आदमी भी अंदर के स्वर से स्वर मिलाते हैं।)

एक आदमी : खुली पिस्तौल है, आगे बढ़े तो समझ लो, मारे जाओगे।

दूसरा आदमी : अरे इस सभ्य मौहल्ले में यह क्या, हत्याकाण्ड ?

तीसरा आदमी : अरे, पकड़ो उसको और कर दो पुलिस के हवाले।

(नीचे पुलिस की गाड़ी आकर खड़ी होती है और उसमें से पुलिस के आदमी सीढ़ी चढ़कर ऊपर आते प्रतीत होते हैं।)

बाहर के समूह में से : पुलिस वान आ पहुंची। चलो भागो, नहीं तो हम भी पकड़े जायेंगे।

अंदर के समूह में घुसर-पुसर : कैसी सभ्य महिला दिखती है। किंतु अब इसका रूप तो देखो।

एक आदमी : पगली होगी पगली।

दूसरा आदमी : मानो न मानो, ज़रूर दाल में कुछ काला है।

तीसरा आदमी : सचमुच ही पुलिस आ गयी। यह चंडी सच ही कहती थी। इसी ने पुलिस को खबर दी होगी।

बाहर से पुलिस की आवाज : दूर हटो, ऐ दूर हटो। यहां कोई तमाशा नहीं हो रहा है।

(अंदर और बाहर के समूह के आदमी खिसकने लगते हैं। कुछ आदमी कौतूहलवश खिड़की और दरवाजे के पास खड़े रहते हैं।)

समूह में से : सुनिए साहब, खुली रिवाल्वर लिए खड़ी है।

मि. मुकर्जी : (प्रवेश करते हुए) कोई बात नहीं। तुम यहां से हट जाओ।

कल्याणी : अंदर ज़्यादा आदमियों के आने की ज़रूरत नहीं है। मैं स्वयं ही आपके साथ पुलिस स्टेशन चलने को तैयार हूं और लीजिए यह रिवाल्वर।

मि. मुकर्जी : पर तुम्हें यहीं पर स्टेटमेंट देना होगा। हवलदार नत्थुसिंह डायरी लिखना शुरू करो।

नत्थुसिंह : जी साहब ! **(डायरी लिखने के लिए बैठता है)** बोलो, तुम कौन हो ?

कल्याणी : मुझे कुछ नहीं कहना। इस समय मैं केवल खूनी औरत हूं, इससे अधिक कुछ नहीं।

मि. मुकर्जी : **(शव की तरफ देखकर)** अरे, यह तो कोई पुलिस अफसर मालूम होता है। और लगता है यह रिवाल्वर भी सोफे पर पड़ी इनकी बेल्ट में से ही निकाला गया है। हवलदार, इन सब वस्तुओं की स्थिति नोट करो। और रामराय, तुम फोन करके मैडिकल कालेज से एक एम्बुलेंस मंगवाकर शव को पोर्टमार्टम के लिए ले जाओ। **(नत्थुसिंह को शव दिखाते हुए)** तुम इसको जानते हो, हवलदार ?

नत्थुसिंह : **(थोड़ी देर देखकर)** नहीं, साहब, यह तो कोई अनजान आफिसर मालूम होते हैं। **(शव को दीवार की ओर घुमाते हुए)** अरे साहब, देखिए तो, गोली बिलकुल नाक और मस्तिष्क के बीच के लगी है। खोपड़ी भी टूट गयी है। मुंह तो बिलकुल पहचानने लायक नहीं रहा।

कल्याणी : **(व्यंग्य से)** आफिसर ! पुलिस आफिसर ! ! हुं, जो भी हो मुझे तो खुशी हुई। मि. मुकर्जी, आपको हथकड़ी डालनी हो तो डाल सकते हैं, वैसे मेरी भागने की इच्छा जरा भी नहीं है।

एक पुलिसवाला : बिलकुल बेशरम मालूम होती है। कुछ शरम है ?

कल्याणी : शरम ! कैसी शरम ?

मि. मुकर्जी : बेकार की बात मत करो। नत्थुसिंह, हमें अपराधी को लेकर थाने जाना है। तुम सारा कमरा अच्छी तरह से देखकर हर बात की पूरी रिपोर्ट दो।

(पुलिस से घिरी कल्याणी कमरे से बाहर निकलती है। मार्ग देते हुए बाहर के समूह में से।)

एक आदमी : रास्ता छोड़ो यार, रास्ता छोड़ो।

दूसरा आदमी : क्या रौब है ?

तीसरा आदमी : जैसे कोई महान काम किया हो।

चौथा आदमी : मानो न मानो पर है हिम्मतवाली।

पांचवां आदमी : अखबार वालों को नयी खुराक मिल गयी।

छठा आदमी : हां रे, कल सेंसेशनल हैडिंग आयेगा, समझ लो।

(धीरे-धीरे आदमियों का कोलाहल बंद होता है। नत्थुसिंह कमरे की सारी

वस्तुओं का बारीकी से निरीक्षण कर रहा है। रामराय फोन के पास जाकर रिसीवर उठाता है। अंधकार होता है और प्रमुख परदे के पीछे दो फुट के अंतर पर सफेद या किसी और रंग का परदा गिरता है।)

(कुछ देर पश्चात उसी स्थान पर धीरे-धीरे प्रकाश बढ़ता है और अदालत की वेशभूषा में तीन जूनियर वकील प्रवेश करते हैं। पीछे अदालत का कोलाहल-पूर्ण वातावरण।)

मि. मैत्र : (वकील नं. 1) मि. चटर्जी ! आज तुम्हारा केस न हो तो चलो जस्टिस घोषाल की अदालत में एक इंटरेस्टिंग केस है।

मि. चटर्जी : (वकील नं. 2) कौन-सा, कल्याणी मजूमदार वाला ? वह भी खूब है। पुलिस के सामने उसने स्टेटमेंट ही नहीं दिया। कहती थी कि मुझे जो कुछ कहना है वह मैं सेशन कोर्ट में कहूंगी। मैं तो ज़रूर जाऊंगा। पर खैर मुवक्किल बीमार है यह कहकर तारीख डलवा लूं।

मि. बोझ (वकील नं. 3) : (बड़प्पन दिखाते हुए) तब तो मुझे भी डेट लेनी पड़ेगी।

वकील नं. 1 : (आश्चर्य से) क्यों, तुम्हारा केस है ? तब तो मुवक्किलों ने तुम्हारे यहां आने का शुभारंभ कर दिया है। बधाई हो।

वकील नं. 2 : प्रेक्टिस शुरू किये कितने वर्ष हुए, मि. बोझ ? **(हंसता है।)**

वकील नं. 3 : एक दिन तुम्हारे मज़ाक का जवाब मैं जरूर दूंगा। रास-बिहारी घोष या चितरंजनदास एक दिन में नहीं हुए थे।

वकील नं. 1 : ओह, आई एम वैरी सॉरी, माई डियर चितरंजनदास।

वकील नं. 2 : हरी, हरी, इट इज़ आलरेडी इलेविन थर्टी ···

(तीनों चले जाते हैं। धीरे-धीरे सफेद परदा उठता है। मंच के पृष्ठ भाग के ऊंचे वाले स्थान को एक लाल परदे से ढक दिया गया है। अग्र भाग के स्टेज के मध्य न्यायाधीश का एक ऊंचा आसन है। न्यायाधीश के दाहिनी ओर क्लर्क की मेज तथा कुर्सी है। उसके बराबर कोर्ट टाइपिस्ट का स्थान तथा उससे आगे मंच के बिलकुल दाहिनी ओर अपराधियों का कटघरा है। न्यायाधीश के सामने बड़ी मेज है। उसके बायीं ओर ज्यूरी का स्थान है। सामान्य सेशन कोर्ट की भांति प्रेक्षकों के बैठने के स्थान की व्यवस्था है। प्रकाश व्यवस्था इस प्रकार है कि एक स्पॉटलाईट न्यायाधीश के मुख पर पड़े तथा दूसरी अपराधी पर पड़े। फुट-

लाईट की स्थिति इस प्रकार है कि उससे सारे मंच पर प्रकाश छा जाये। एक स्पॉटलाईट न्यायाधीश के सिर पर होनी चाहिए। न्यायाधीश की प्रतीक्षा में सब आतुरता से बैठे हैं। प्रेक्षक घुसर-पुसर कर रहे हैं। बायीं ओर से चपरासी आता है और उसके पीछे वयोवृद्ध न्यायाधीश मि. घोषाल प्रवेश करते हैं। कोर्ट में सन्नाटा छा जाता है। सारी कोर्ट खड़ी हो जाती है।)

जज घोषाल : **(अपना स्थान लेते हुए)** मि. गांगुली, पहला केस ?

क्लर्क : वेस्ट बंगाल स्टेट विरुद्ध मिस कल्याणी मजूमदार।

जज घोषाल : मि. सेन, आपका केस तैयार है ?

पब्लिक प्रोसिक्यूटर मि. सेन : यस, मि लार्ड।

जज घोषाल : अपराधी को हाजिर करो।

(बिखरे हुए बालों का जूड़ा बनाये शरीर पर शाल ओढ़े हुए कल्याणी को सब-इंस्पैक्टर मुकर्जी कटघरे में लाते हैं। तुरंत अदालत में घुसर-पुसर शुरू हो जाती है—आवाज बढ़ जाने पर।)

जज घोषाल : आर्डर, आर्डर। बचाव पक्ष का वकील कौन है ?

कल्याणी : वकील ? मुझे किसी वकील की ज़रूरत नहीं। मुझे जो कुछ कहना है वह बिलकुल साफ है। उल्टा-सीधा कुछ नहीं करना है इसलिए मुझे किसी वकील की ज़रूरत नहीं।

जज घोषाल : अच्छा ! तो मि. सेन आप अपना केस पेश कर सकते हैं।

मि. सेन : **(खड़े होकर)** यस, मि लार्ड। **(खंखार कर)** मि लार्ड एंड जैंटलमैन आफ दी ज्यूरी। आपके समक्ष यह जो औरत खड़ी है। कल्याणी मजूमदार, उस पर प्रस्तुत आरोप में ···

कल्याणी : **(बीच में)** आरोप ? मुझ पर।

मि. सेन : बीच में मत बोलिये।

जज घोषाल : आर्डर, आर्डर।

मि. सेन : **(आगे पढ़ते हुए)** आज से एक मास पूर्व अर्थात 22 जुलाई 1950 शनिवार की रात साढ़े-नौ बजे लाल बाजार पुलिस स्टेशन फोन आया ···

कल्याणी : **(कुछ थकी आवाज में)** संक्षेप में बताइये मि. सेन। आपको यही कहना है न कि मैंने खुद ···

मि. सेन : नियम और कानून, और व्यवस्था की दृष्टि से जो होता है, वही होगा …

कल्याणी : नियम और व्यवस्था। हा … हा (**हंसती है**) कौन-सा नियम? कहां है व्यवस्था?

जज घोषाल : आप क्या कहना चाहती हैं?

कल्याणी : यही कि आपके कानून और व्यवस्था से मुझे कोई मतलब नहीं। मुझे उससे नफरत है।

जज घोषाल : आरोप की रिपोर्ट पढ़ लेने दो। बाद में जो कहना हो कह सकती हो।

मि. सेन : मैं भी संक्षेप में ही समाप्त करता हूं। मिस कल्याणी मजूमदार ने जुलाई की 22 तारीख की रात, 12 नं. निर्मल लोहिया लेन वाले मकान में एक अनजान पुलिस अफसर का खून किया …

जज घोषाल : अनजान अफसर का? क्यों अभी तक पुलिस उसका नाम-धाम नहीं जान सकी?

मि. सेन : मि लार्ड! मृतक के चेहरे पर इस प्रकार गोली लगी है कि उसको पहचानना कठिन है।

जज घोषाल : किंतु कपड़े, रिवाल्वर आदि से, आपके पुलिस रजिस्टर में अफसरों की हाजिरी से तो …

मि. सेन : इस विषय में पुलिस की खोज जारी है, किंतु इस केस में मिस मजूमदार ने एक आदमी का खून किया है, यही महत्व की बात है …

जज घोषाल : प्लीज गो आन विद युअर केस।

मि. सेन : यस, मि लार्ड! (**पढ़ता है**) और फोन से पुलिस को खबर देकर अपराधी के रूप में स्वयं को पुलिस के हवाले कर दिया। पुलिस की रिपोर्ट से यह पता चला है कि मिस कल्याणी पूर्व बंगाल की एक निराश्रित युवती है, और साथ ही पुलिस का विचार है कि इसने अपने सौंदर्य तथा बुद्धि के जाल में अनेक आसामियों को फंसाकर …।

कल्याणी : (**चिल्लाकर**) यह झूठ है, बिलकुछ झूठ …

जज घोषाल : आर्डर, आर्डर।

मि. सेन : (**आगे पढ़ते हुए**) और अनेक लोगों को चौपट कर दिया है।

पिछले तीन महीनों में कम से कम… ।

कल्याणी : (**गुस्से में जोर से चीखती हुई**) कानून और व्यवस्था के रखवालो, अब सुन लो। अब तक मैं धैर्य रखकर अदालत के नियमों का पालन करती रही, किंतु अब मुझे बोलने से कोई नहीं रोक सकता।

मि. सेन : यह अदालत का अपमान है, मि लार्ड।

कल्याणी : उसके लिए जो भी सजा आपके कानून में हो, वह मुझे दे सकते हैं, मि. सेन। अब मैं अपराधी हूं। मेरा विचार अपराध कबूल करके चुपचाप सजा पा लेने का था। किंतु आज कानून और व्यवस्था के नाम पर तुम जो झूठ पेश कर रहे हो, उससे मैं चुप नहीं रह सकती। मेरी जैसी निराश्रित और दुखी औरतों के लिए तुम्हारे कानून और तुम्हारी व्यवस्था को चुनौती देती हूं।

जज घोषाल : आपको जो कुछ कहना है शांति से कहिए।

कल्याणी : स्थिरता ? शांति ? आज मेरे हृदय में अग्नि जल रही है, मेरे शरीर में सहस्रों बिच्छुओं की-सी वेदना हो रही है, और आप मुझसे शांत होने को कहते हैं ? मुझ से स्वस्थता की अपेक्षा करते हैं ? जज साहब, आपके लड़की है ? मि. सेन, आपके कोई जवान बहन है।

मि. सेन : यह हद हो रही है, मि लार्ड। अपराधी को…

जज घोषाल : (**शांत स्थिर आवाज में**) इनको बोलने दो, मि. सेन। (**सहानुभूतिपूर्ण स्वर में**) बोलिए, बहन।

कल्याणी : (**रुंधे हुए स्वर से**) बहन ? आपने मुझे बहन कहा ? मेरे पिताजी भी प्यार से मुझे इसी प्रकार बुलाते थे। 1946 में ढाका की लड़ाई के समय युनिवर्सिटी से वापस आते हुए उत्तेजित भीड़ को समझाने में जातिवाद की छुरी का शिकार हो गये और हमें बेसहारा छोड़ गये (**रोने लगती है।**)

मि. सेन : कौन प्रो. मजूमदार ? प्रो. विमल मजूमदार, जो हिंदू-मुस्लिम दंगों को शांत करते हुए मारे गये। वह आपके पिताजी थे ?

कल्याणी : हां, वही मेरे पिताजी। मैं उनकी ही पुत्री, आज खून के अपराध में आपके सामने खड़ी हूं।

मि. सेन : आप जैसी सुसंस्कृत युवती को यह क्या सूझा ?

जज घोषाल : उत्तेजित न होइए, मि. सेन। आगे बोलिए, कल्याणी।

कल्याणी : बंगदेश के पूर्व और पश्चिम दो भाग होने के बाद भी मैंने, अपनी

माताजी और छोटे भाई के साथ ढाका में ही रहने का निश्चय किया। किंतु धीरे-धीरे स्थिति बिगड़ती गयी। किसी प्रकार मैं एम. ए. के **अंतिम वर्ष तक पहुंची। किंतु पेपर्स देने से पहले ही मुझे** पढ़ाई छोड़नी पड़ी। अपने **छोटे भाई को पढ़ाने और घर चलाने के लिए मेरे** पास नौकरी करने के अतिरिक्त **और** कोई उपाय **भी नहीं था।** धीरे-धीरे हमारे लिए ढाका में रहना दूभर हो गया और अंत में फरवरी-मार्च के दंगों में गुंडों के अत्याचार से बचने के लिए मैं, मेरी मां और छोटा भाई आश्रय की खोज में निकल पड़े। हां आश्रय ! जो आप बता रहे थे, उस कानून और व्यवस्था में सरकार के सुरक्षित आश्रय की खोज में एक दिन हम सियाल्दा स्टेशन आ उतरे। हम आश्रय की खोज में थे तभी एक दिन ···।

(स्टेज के अग्र भाग पर बिलकुल अंधेरा हो जाता है तथा घने प्रकाश में पीछे का परदा खुलता है। स्टेज के ऊंचे भाग में स्टेशन के वेटिंग रूम जैसा फर्नीचर सजा हुआ है। कमरे का दरवाजा स्टेज के पृष्ठ भाग पर खुलता है। स्टेज पर रहने वाले स्त्री-पुरुषों की हलचल तथा उनका व्यवस्थित रखा हुआ सामान दिखता है। कमरे के अंदर अस्त-व्यस्त पड़े सामान के बीच में लगभग 50 वर्ष की आयु की एक वृद्धा सफेद साड़ी तथा सफेद चादर में सिमटकर बैठी है। उसकी गोद में 15 वर्ष का लड़का सिर रखे सो रहा है। उसके बाल अस्त-व्यस्त हैं। दोनों यात्रा से थके प्रतीत होते हैं।)

धीरज : (गोद में पड़े-पड़े) मां, दीदी अभी तक क्यों नहीं आयी ? मुझे बहुत भूख लगी है।

मां : थोड़ी देर रुक जा बेटा, आती ही होगी। इस अनजान शहर में वह कहीं रास्ता न भूल गयी हो। हे प्रभू ! तू ने यह क्या दिखाया है ? राजकुंवरि जैसी मेरी लाड़ली बेटी को इस अंजान शहर में खाने के लिए भटकना पड़ रहा है। ओ भगवान, यह सब कब खत्म होगा ?

धीरज : क्यों मां ! फिर क्या हुआ ? मैंने नहीं कहा था कि मुझे जरा बड़ा हो जाने दे, पिताजी जैसे मैं भी पढ़-लिखकर बड़ा प्रोफेसर हो जाऊंगा और तब तुझे कोई चिंता नहीं करनी पड़ेगी। दीदी भी किसी दिन नाम कमायेगी। हम हैं तो तू क्यों चिंता करती है ?

मां : तो फिर भूख-भूख कहकर क्यों तंग कर रहा है ?

(मंच के अग्र भाग से कल्याणी निकलकर सामान्य परिवर्तन करके हाथ में

कुछ खाने की सामग्री के साथ प्रवेश करती है। (सुगमता के लिए अदालत में कल्याणी ने शरीर पर एक शाल तथा जूड़ा बनाया हुआ है। यहां दूसरे दृश्य में प्रवेश करते समय वह शाल उतारकर बाल खोल लेती है) जिस समय वह प्रवेश करती है उस समय उसके पीछे दो-तीन युवक तथा एक प्रौढ़ व्यक्ति आ रहे हैं और एक-दूसरे को संकेत करते प्रतीत होते हैं। कल्याणी इससे अनभिज्ञ है।)

कल्याणी : बहुत भूख लगी है धीरज ? मैं तेरे लिए कुछ संदेश, नमकीन और आलुदम लायी हूं। चल बैठ जा।

धीरज : (**खुशी से कल्याणी से लिपट जाता है**) क्यों मां, मैं कह रहा था न ? दीदी को तू अभी अच्छी तरह नहीं जानती।

(इसी समय वे व्यक्ति एक-एक करके प्रवेश करते हैं और खांसकर उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित करते हैं।)

सच्चित : क्षमा कीजिए मांजी, मैं ·· मैं ·· सच्चितराय, बंग नारी रक्षा समिति का मंत्री हूं। हमारी समिति पूर्व बंगाल से आने वाले सैकड़ों अनाथ स्त्रियों तथा बच्चों की रक्षा करने का काम कर रही है। ये हैं श्रीमान् गांगुली, सत्येन गांगुली, हमारे सहायक मंत्री। और यह हैं सुव्रत दस्तीदार हमारे मंडल के खजांची ···

सुव्रत : नमस्ते मांजी, नमस्ते मिस ···।

मां : इसका नाम कल्याणी है और लड़के का नाम धीरज।

सत्येन : अच्छा ? बहुत सुंदर। आप तो बहुत प्रगतिशील लगते हैं ?

सच्चित : (**उसे टोकते हुए**) सत्य ! ··· मेरा मतलब कि यदि आप भी इस प्रकार के कल्याणकारी नारी रक्षा के काम में हमारे मंडल की सहायता करें तो पूर्व बंगाल की आपद्ग्रस्त, पीड़ित महिलाओं की मदद करने में आप भी काम आ सकती हैं। आप जैसी स्त्रियों को भली प्रकार समझने में ···।

मां : अच्छा है, बेटा, इसमें बुरा क्या है ? इसके पिताजी का भी यही आदर्श था कि उनकी कल्याणी देश के कल्याण में जीवन बिताये।

सच्चित : हमारा भी यही कहना है, मां ! मिस कल्याणी यदि आप हमारे साथ चलें तो इस सत्कार्य के लिए चंदा उगाहने में बहुत सहायता मिल सकती है।

सुव्रत : आपकी तरह और भी बहुत-सी बहनें ढाका, बारीसाल, चटगांव से आयी हुई हैं और हमें इस शुभ कार्य में बहुत मदद करनी है।

कल्याणी : किंतु मेरी मां अपंग है और भाई भी बच्चा है। इसलिए इनके प्रति मेरा फर्ज मुझे और कुछ नहीं करने देता।

सच्चित : ओ हो ! उसके लिए आप बेफिक्र रहिए। मां के लिए हम अच्छी व्यवस्था करेंगे और धीरज के लिए भी बालीगंज के सरकारी स्कूल में दाखिला करवाने की व्यवस्था कर देंगे।

मां : फिर क्या बुरा है, बेटा ?

सत्येन : और मिस कल्याणी ! आपके लिए भी सेक्रेटेरियेट में विशेषकर पूर्व बंगाल के शरणार्थियों के लिए जो स्थान है उसमें नौकरी की व्यवस्था भी हम कर सकते हैं। सुव्रत की वहां अच्छी जान-पहचान है।

सुव्रत : वो तो रिहेबिलीटेशन सेक्सन में श्री बेनी विश्वास को कहने भर की देर है।

मां : कितने भले मानस हैं, कल्याणी।

कल्याणी : मां, अनजान लोगों के साथ···।

मां : सारा देश ही हमारे लिए अनजान है, बेटी। यह तो सज्जन लोगों से मुलाकात हो गयी।

(ऊंचे मंच पर परदा गिरता है और धीरे-धीरे अग्र मंच पर प्रकाश होता है। इसी समय कल्याणी पुनः अदालत के कटघरे में आकर खड़ी हो जाती है। उसने शाल ओढ़ ली है और बाल ठीक कर लिए हैं।)

कल्याणी : और उस दिन मैं उनके साथ बाहर निकल गयी। चंदा एकत्रित करने के बहाने उन्होंने मुझे बढ़िया कारों में घुमाया, बढ़िया होटलों में नाश्ता करवाया और शाम होते-होते जब मैंने घर लौटने का आग्रह किया तो सुव्रत ने बताया कि कोई बनारसीदास नाम के बहुत बड़े दानवीर हैं, उनसे आखिरी मुलाकात करके ही वापिस लौटेंगे।

(गहरी सांस लेकर पसीना पोंछती है।)

जज घोषाल : लगता है तुम थक गयी हो।

कल्याणी : नहीं-नहीं, मैं थकी नहीं। हां··· उसके बाद शहर से दूर एक आलीशान मकान में वे लोग मुझे ले गये। वहां की सजावट आकर्षक थी। चमकते हुए दीवानखाने में मुझे बिठाकर वे लोग कुछ देर में वापस आने के लिए कहकर चले गये। आधे घंटे तक मैंने उनका इंतजार किया किंतु कोई वापस नहीं आया।

आधी रात होने को आ गयी। मेरे मन में संदेह होने लगा और···।

(पुनः अग्र मंच पर प्रकाश कम होकर अंधेरा हो जाता है। पीछे वाला परदा उठता है और एक आधुनिक तथा कीमती सामग्री से सजा हुआ दीवानखाना दिखाई पड़ता है। चित्र, शीशे, कुर्सियां, सोफासेट आदि वस्तुएं धन-वैभव प्रदर्शित करने के लिए एकत्रित की हुई प्रतीत होती हैं। एक कुर्सी पर अधीर मन से कल्याणी बैठी हुई दिखती है। उसके मुख पर अस्वस्थता और भय के चिह्न स्पष्ट दृष्टिगोचर होते हैं। इतनी देर में कल्याणी के बायीं ओर के दरवाजे से सच्चित, सुव्रत, सत्येन तथा अन्य दो-तीन हिन्दुस्तानी प्रजा के प्रतिनिधि जैसे लगने वाले पुरुष प्रवेश करते हैं। सुडौल शरीर, मुंह में पान, जलती हुई सिगरेट, हाथ में पतली घड़ी, बारीक मलमल का सुगंधित कुर्ता, चूड़ीदार पाजामा और अचकन—इस प्रकार पहनी हुई हैं जिससे वे किसी प्रांत विशेष के रहने वाले न लगें।)

सुव्रत : **(हंसते हुए प्रवेश करता है)** देखिये सेठजी! सिर्फ बीस साल की लड़की है।

सत्येन : जैसे गुलाब की कली।

सच्चित : हां, सेठजी, अब एक बात हमारी माननी होगी। नारी कल्याण फंड में कम-से-कम···।

सेठजी : अरे चाहे जितना रुपया ले लीजिए। इसमें क्या बड़ी बात है? क्यों लहेरीमलजी, क्या राय है?

लहेरीमल : आज तो मैं सारी जान लड़ाने को तैयार हूं जी। ऐसी हुस्न की परी जब खोज लाये हो तो···

कल्याणी : **(उत्तेजित होकर)** सच्चित बाबू! कितनी देर हो गयी इसका तो ख्याल करो। मां और धीरज कितनी चिंता करते होंगे?

सच्चित : हां, हां, मिस मजूमदार। यहां का काम खत्म करके हम तुरंत चल पड़ेंगे।

कल्याणी : तो अब क्या काम बाकी है?

सेठजी : यह तो अपना ही महल समझो, और मैं, लहेरीमलजी और ये सब बाबू लोग तो तुम्हारे चरणों के दास हैं···।

सच्चित : बस, माई डियर कल्याणी···।

कल्याणी : यह क्या सच्चित बाबू ! इस प्रकार का असभ्य व्यवहार आपको शोभा नहीं देता ।

सत्येन : सभ्य समाज तो यहां से मीलों दूर है ··· (**कल्याणी की ओर बढ़ता है।**)

कल्याणी : दूर रहो मुझसे, वरना मैं शोर मचा दूंगी ।

सुव्रत : यह तो जंगल है जंगल । इस समय आधी रात को यहां पक्षी पंख भी नहीं चला सकते । डू नाट मेक ए सीन । बी बिजनेस लाईक । तुम्हारी मुश्किलों के लिए हमने यह मार्ग निकाला है । सेठजी बहुत उदार हैं ···

लहेरीमल : अरे हां बाईजी ।

कल्याणी : बाईजी ! मुंह संभालकर बोलो सेठ ···।

सेठजी : अरे, तुम तो बड़ी तेज़ मालूम होती हो । मि. गांगुली, इसको हमारी तरफ से और एक हजार ··· गुलाब की कली है ।

कल्याणी : गुलाब में कांटे भी होते हैं, यह मत भूलो । शरम नहीं आती तुम सब को एक भद्र महिला की बेइज्जती करते हुए ? सच्चित बाबू, तुम्हें नहीं आना तो मत आओ, मैं जा रही हूं । अपना रास्ता मैं खोज लूंगी ।

सच्चित : इस समय कहां जायेगी ?

सत्येन : खबरदार, यहां से हिली तो ।

कल्याणी : दूर रहो, दूर––कहती हूं । अरे, मुझे कोई बचाओ ···।

(**भागने का प्रयत्न करती है । दरवाजे की ओर जाती है, पर दरवाजे के बीच में दोनों सेठ आकर खड़े हो जाते हैं और जोर-जोर से हंसते हैं । एकदम अंधेरा छा जाता है । एक मर्मभेदी चीख मारकर कल्याणी भूमि पर गिर पड़ती है । तीव्र उत्तेजक संगीत, शनैः-शनैः अग्र मंच पर प्रकाश होता है । अदालत में सब के मुख पर उत्तेजना और सहानुभूति के भाव दिखाई देते हैं । कल्याणी मानो दुखद स्वप्न से जगी हो, इस प्रकार अपने आप में संकोच का अनुभव करती हुई दृढ़ और स्थिर आवाज में अपनी बात आगे बढ़ाती है ।**)

कल्याणी : और जब मैं होश में आयी तो अपने अस्त-व्यस्त कपड़ों के अंदर सहस्रों बिच्छुओं के काटने की पीड़ा अनुभव कर रही थी । मेरा मस्तिष्क व्याकुल हो गया था । शरीर, मन और उससे भी अधिक मेरी आत्मा को चोट पहुंची थी । चारों ओर देखा तो कोई बेहोशी की अवस्था में ही मुझे रातों-रात अनजान स्थान पर डाल गया था ··· पानी ।

जज घोषाल : घबराओं नहीं। चपरासी, पानी लाओ ···।

कल्याणी : (**कुछ स्थिरता से पुनः खड़ी होकर**) नहीं, नहीं, अब अपनी बात पूरी कर ही दूं। (**गहरी सांस लेकर**) अनजान मकान में से मैं मुश्किल से उठकर नीचे आयी पर इतनी देर में मुझे फिर चक्कर आ गया। जब मुझे होश आया तो मैं मैडिकल कालेज के जनरल वार्ड में अनजान व्यक्तियों के बीच में थी। दो-ढ़ाई महीनों में मैं कुछ स्वस्थ हुई। इस अरसे में पुलिस की ओर से मेरी रिपोर्ट लेने तथा केस की खोज-बीन करने के लिए अलग-अलग अफसर आते थे। मेरी तबियत ठीक हो जाने पर सरकार की ओर से बाऊ बाजार में निर्मल लोहिया गली में मुझे आश्रय मिला।

जज घोषाल : अर्थात उस घटना के दो मास पश्चात तुमने अस्पताल छोड़ दिया, ठीक है न ?

कल्याणी : जी, और ···और अब पिछले शनिवार की घटना।

(**अग्र मंच पर फिर अंधेरा छा जाता है। धीरे-धीरे पीछे का परदा खुलता है तथा नाटक का वही प्रारंभिक कल्याणी का कमरा दृष्टिगोचर होता है। सोफा, कुर्सियां, टेलीफोन, आदि उसी प्रकार रखे हैं। कल्याणी सोने की तैयारी करती है, इसी समय दरवाजे पर जोर से धक्का मारकर पुलिस अफसर के वेश में तिरछी हेट, आंखों पर गॉगल्स तथा मूंछों वाला एक युवक प्रवेश करता है और खांसकर कल्याणी का ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करता है।**)

कल्याणी : कौन हो तुम ? इस समय यहां क्या काम है ?

युवक : (**हैट को जरा ऊंचा करते हुए**) हो हो ! क्यों, मुझे नहीं पहचाना ? मैं तुम्हारे हाल-चाल पूछने आया हूं।

कल्याणी : (**कुर्सी के साथ चिपक गयी हो, इस प्रकार**) नहीं, नहीं, मैं तुम्हें नहीं पहचानती, और अब इस समय मुझे किसी से कुछ काम नहीं।

युवक : (**आराम से आंखों पर से गॉगल्स हटाता है**) जरा गौर से देखो, मिस मजूमदार, आज से तीन महीने पहले हम सियाल्दा स्टेशन पर मिले थे, भूल गयीं क्या ?

कल्याणी : कौन ? कौन, तुम ? ओह, तुम ! ··· तुम सच्चित ? सच्चितराय ? इस वेश में ? ये मूछें ?

युवक : सब नकली। तुम्हारे पास आने का इससे सरल रास्ता और कोई

नहीं दिखा। इससे डर लगता हो तो लो यह सब निकालकर एक ओर रख दूं। (**बेल्ट, रिवाल्वर, हाथ की छोटी घड़ी, हैट आदि सोफे पर रख देता है।**)

कल्याणी : पर तुम फिर से यहां किस लिए आये हो ? तुम चले जाओ। यहां से जाओ ··· पापी ··· नीच।

सच्चित : अरे, मैं तो तुम्हें तुम्हारी मां के पास ले जाने के लिए आया हूं।

कल्याणी : मुझे नहीं जाना मां के पास। मुझे मां से नहीं मिलना।

सच्चित : यह क्या कहती हो ?

कल्याणी : मैं ठीक कहती हूं। इस जीवन में अब मैं अपनी मां से मिलने योग्य नहीं रही।

सच्चित : अरे, पर धीरज, तुम्हारा भाई, तुम्हें कितना याद करता है।

कल्याणी : मुझे उससे भी नहीं मिलना। तुम यहां से चले जाओ।

सच्चित : खैर छोड़ो इन बातों को। वो सब तो हो जायेगा।

कल्याणी : अब तुम यहां से जाओगे ? हटो यहां से, मैं कहती हूं।

सच्चित : आज मेरा दिल प्यासा है, कल्याणी। इधर आओ, मेरे पास। उन सेठों से क्या मैं बदसूरत हूं ?

कल्याणी : हटो, कहती हूं। (**सच्चित धीरे-धीरे उसके पास आता है**) हटो, हटो, मैं कहती हूं। वरना-वरना (**सोफे पर पड़ी हुई बेल्ट में से रिवाल्वर खींचकर निकाल लेती है**) यह देखा है ?

सच्चित : अरे, अरे, यह क्या करती हो ? यह तो भरा हुआ रिवाल्वर है। (**समझाते हुए**) उसके साथ खेल मत करो, कल्याणी। और देखो मेरे पास आओ ···नहीं आओगी ? तो लो मैं तुम्हारे पास आता हूं।

कल्याणी : दूर रहो, दूर, मैं कहती हूं। (**कमरे में चक्कर काटती है और अपनी पहली जगह पर आकर खड़ी हो जाती है। सच्चित बढ़ता-बढ़ता मेज और सोफे के बीच में आ जाता है।**)

सच्चित : कल्याणी, मैं तुम्हें ···

कल्याणी : एक कदम भी आगे बढ़ाया तो गोली तुम्हारी छाती पार करके निकल जायेगी, सच्चित—(**दृढ़ता से रिवाल्वर पकड़ लेती है।**)

सच्चित : अरे, मुझे तू डराती है ? बाईजी ··· हो, ··· हो, ··· आ ··· आ ···।

(**आगे बढ़ता जाता है। मंच पर प्रकाश कम होता जाता है। रिवाल्वर की

आवाज तीन बार सुनाई देती है। 'ओ बाप रे, मर गया' कहकर वह गिर पड़ता है। एकदम पूर्ण अंधकार छा जाता है। परदा गिरता है। अदालत का दृश्य पूर्ण प्रकाश में होता है। सारी अदालत स्तब्ध रह जाती है तथा जब तक लोगों को कुछ सूझे, उससे पहले बिखरे हुए बालों वाली कल्याणी आवेश में उत्तेजित होकर बोलने लगती है।)

कल्याणी : हां, मैं खूनी हूं, मि. सेन ! मुझे सजा दो, मुझे फांसी पर लटका दो, मुझे ···।

जज घोषाल : शांत हो जाओ कल्याणी। आनरेबल जंटलमैन आव दी ज्यूरी, आपको इस विषय में क्या कहना है ?

(ज्यूरी के सदस्यों की आपस में कुछ देर तक बातचीत होती है, तत्पश्चात उनकी ओर से।)

ज्यूरी के प्रमुख : हमारा विचार है कि इस औरत को मुक्त करना चाहिए। यह संयोग का शिकार बनी है।

कल्याणी : नहीं, नहीं, कृपा करके मुझे मुक्त मत करिये। मैं विनती करती हूं कि मुझे मरने दीजिए, फांसी पर लटका दीजिए। मैंने खून किया है; सच कहती हूं मैंने खून किया है।

ज्यूरी के प्रमुख : किंतु बहन, परिस्थितियों को देखते हुए हमने तुम्हें बेगुनाह माना है। तुमने जो किया, वह आत्मरक्षा के लिए किया और इसलिए तुम्हें मुक्ति मिलनी ही चाहिए।

कल्याणी : **(बहुत आवेश में)** मुक्ति। किससे मुक्ति ? मृत्यु से मुक्ति मेरे लिए मुक्ति नहीं है। सुनिए साहब, मुझे मरना है, मुझे मरना ही चाहिए, यही मेरे लिए मुक्ति है। मेरे इस शिथिल शरीर में पिछले दो महीनों से एक जीव का संचार हो रहा है। ··

एक साथ सब : हें ! हूं ! क्या कहती हो ?

कल्याणी : क्यों ? क्यों ? डर क्यों गये ? मैं कहती हूं कि यह पाप मेरा नहीं है, यह कलंक मेरा नहीं है। तुम्हारे समाज के सभ्य कहे जाने वाले व्यक्तियों का पाप है। तुम्हारे कहने का मतलब है कि ऐसे लोगों का पाप और कलंक लेकर मैं इस संसार में जीवित रहूं ? तुम न्याय करने बैठे हो तो मैं पूछती हूं कि न्याय क्या है ? कानून की रक्षा करने वालों से पूछती हूं कि कानून किस के लिए है ? इन

छुपे हुए गुनहगारों को क्या यह सजा दे सकेगा ? ऐसे अंधे समाज में, पशु जैसे इन लोगों के बीच कलंकित जीवन जीने के लिए मैं जीवित रहूं ? नहीं, नहीं, जज साहब, मुझे और मेरे शरीर में पलते हुए जीव को मृत्यु-दंड देकर हमारी यातनाओं से हमें मुक्त करो। मैं याचना करती हूं, तुमसे भीख मांगती हूं—मैंने खून किया है, मुझे फांसी दो।

जज घोषाल : उत्तेजित मत हो कल्याणी। तुमने जो कदम उठाया था, वह अपनी रक्षा तथा स्वाभिमान को बचाने के लिए था। तुम जिन परिस्थितियों में थी, कानून की दृष्टि से उनमें तुम्हारा यह कदम तुम्हें खूनी सिद्ध नहीं करता तथा ज्यूरी के निर्णय से सहमत होकर मैं तुम्हें खून के आरोप से मुक्त करता हूं। तुम निर्दोष हो ··· इंस्पैक्टर इन्हें मुक्त करो।

कल्याणी : किंतु मुक्त होकर मैं कहां जाऊं ? मानव-पशुओं से भरे इस समाज में अब मैं किस प्रकार रह सकती हूं ? (**मुक्ति मिलने पर कटघरे में से कुछ अस्वस्थ अवस्था में उतरते हुए**) मैं तो ··· मैं जा रही हूं दूर ··· दूर, भाग्य की गोद में ··· धरती मां। सीता की भांति मुझे तू अपनी गोद में समा ले, जहां इस शापित, पापी मानव समाज की छाया भी मुझे स्पर्श न कर सके।

(**धीरे-धीरे मंच की बायीं ओर लड़खड़ाती हुई चलती है। मुख पर विषाद की गहरी छाया है। इस समय प्रकाश केवल कल्याणी के मुंह पर पड़ता है। सारी अदालत पर मद्धम प्रकाश है तथा जस्टिस घोषाल के अतिरिक्त सभी नतमस्तक खड़े हुए हैं ··· धीरे-धीरे कल्याणी के मुख की रेखाएं परिवर्तित होती हैं—वह कुछ सोचने लगती है और उसके बाद अपने अंतः से किसी गंभीर आवाज को सुनती हो, इस प्रकार सब इंद्रियों को केंद्रित करके वह आवाज सुनने के लिए स्थिर खड़ी हो जाती है ··· अंतः में अजन्मे बच्चे की दर्दभरी आवाज सुनाई देती है ···।**)

आवाज : मां, मां, तू कहां जा रही है ? यदि तू आत्महत्या का मार्ग अपनायेगी तो मेरा क्या होगा ? मैं निर्दोष हूं, मां। मैं तो देश के संक्रांति काल का एक बीज हूं। मुझे जीना है; और तभी देश भी जियेगा। तू जानती है ना मां, मैं तेरे जैसी हूं तू अकेली नहीं है, और मेरे जैसे भी सहस्रों बच्चे हैं। उन सबको स्वाभिमानपूर्वक जीने का अवसर नहीं देगी ? अगर तू इस संक्रांतिकालीन पशुता से घबराकर आत्मविसर्जन कर लेगी तो हम ऊंचा सिर करके कैसे जियेंगे ? उठ

मां, स्वस्थ हो। अपने हृदय के विषाद को फेंक दे। उठ मां, उठ··· उठ···

(कल्याणी स्थिर होकर सुनती रहती है, उसकी आंखों में नवीन चमक आती है, मुख पर हलकी-सी स्मित रेखा छा जाती है।)

कल्याणी : आ, नन्हें बच्चे, स्वागतम् !

(परदा गिरता है।)

लेखक-परिचय

रसिकलाल छोटालाल पारीख—(1897-) विद्वान् साहित्यकार एवं इतिहास-पुरातत्त्वविद्। गांधीजी द्वारा स्थापित गुजरात विद्यापीठ के प्रथम दशक के अध्यापक एवं 'पुरातत्त्व' के संपादक। संप्रति गुजरात विद्यासभा के भो. जे. विद्याभवन के मानवीय अध्यक्ष तथा प्राचीन भारतीय संस्कृति के स्नातकोत्तर प्राध्यापक है। दो वर्ष तक गुजराती परिषद् के प्रमुख रहे हैं। नाट्यशास्त्र का आपको पर्याप्त ज्ञान तथा नाटक एवं रंगमंच के प्रति गहन आस्था है। आपके नाटक 'शर्विलक' को साहित्य अकादमी का पुरस्कार मिला है। प्रस्तुत संग्रह में संकलित आपका 'मैना गुजरी' अहमदाबाद, बंबई, दिल्ली आदि नगरों में पर्याप्त सफलतापूर्वक अभिनीत हो चुका है। आपने एक कथा-संग्रह, एक विवेचनात्मक संग्रह तथा एक काव्य-संग्रह की रचना की है। स्व. रामनारायण के सहयोग से किया हुआ 'काव्यप्रकाश' का अनुवाद, 'वैदिक पाठावली' का संपादन, आनंद, मीमांसा' तथा 'गुजरात की राजधानियां' नामक आलोचनात्मक ग्रंथ आपकी विद्वत्ता को प्रकाश में लाते हैं।

चंद्रवदन मेहता — (1901-) नाटककार एवं कवि। युवावस्था में कुशल अभिनेता और दिग्दर्शक। रंगमंच एवं साहित्यिक नाटक के अंतर को मिटाने में आपका प्रशंसनीय सहयोग रहा है। अनेक वर्षों तक शिक्षक तथा भारतीय आकाश-वाणी के अधिकारी रह चुके हैं। संप्रति महाराज सयाजीराव विश्वविद्यालय, बड़ौदा के नाट्य संगीत महाविद्यालय में नाट्यशास्त्र के माननीय अतिथि प्राचार्य। नाटक तथा रंगमंच के अनवरत शोधकर्ता के रूप में आपने यूरोप एवं अमेरिका की नाट्य-रंगमंच परिषदों में भाग लेकर पाश्चात्य रंगमंच का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त किया। आपने चरित् नाटक, प्रहसन, त्रासदी, बालनाटक, एकांकी, यथार्थवादी नाटक, काल्पनिक नाटक, रेडियो नाटक आदि नाट्य प्रकारों पर अपनी लेखनी की परीक्षा की। लगभग बीस नाट्य-प्रकाशनों में से 'आग गाड़ी', 'नागाबाबा' 'रमकडांनी दुकान', 'सीता', 'पांजरापोळ', 'धरागुर्जरी' आदि आपके प्रसिद्ध नाटक हैं। अतीत तथा प्रवासकालीन संस्मरण आपने लाक्षणिक शैली में लिखे हैं।

यशवंत पंड्या—(1906-1955) एम. ए. तक शिक्षा। एक दशक से साहित्यसृजन में आप नाट्यकला के उपासक रहे। बीमा व्यवसाय तथा दिल्ली प्रवास में आपकी लेखन प्रवृत्ति का ह्रास हुआ। इससे पूर्व आपने नाटक की सात पुस्तकें प्रदान कीं, जिनमें से बालनाटक, एकांकी आदि के तीन संग्रह सहज सुलभ हैं तथा 'पडदा पाछळ' एवं 'अ. सौ. कुमारी' अब पुनः प्रकाशित हो रहे हैं। संवाद, लघु नाटक तथा एकांकी लेखन में आप अग्रगामी थे। 'वीणा' तथा 'शरद' वार्षिक का कुशल संपादन तथा प्रकाशन किया। अपने मृदुस्वभाव से आप दिल्ली निवासकाल में गुजरात संस्कृति के राजदूत बन गये थे।

बटुभाई उमरवाडिया—(1899-1950) विद्यार्थीकाल से ही आपके हृदय में साहित्य प्रेम का बीजारोपण हो गया था। स्नातक होते-होते आप 'चेतन' एवं 'विनोद' दो मासिक, तत्पश्चात 'सुदर्शन' नामक साप्ताहिक पत्र प्रारंभ करने की ओर प्रवृत्त हुए। सन 1920 ई. से 1930 तक का समय साहित्य सृजन का काल रहा। सरकारी नौकरी, वकालत तथा अहमदाबाद मिल मालिक यूनियन के मंत्री के रूप में जीवनानुभव एवं नित परिवर्तित वृत्तियों ने आपको साहित्य-सृजन के प्रति उदासीन कर दिया। तत्कालीन व्यक्ति विशेषों के सरस एवं प्रगल्भ रेखा-चित्र तथा रसात्मक पत्र-शैली के साहित्य-विवेचन के अतिरिक्त कथा और नाटक सृजन में आपने नव लेखन की प्रतिभा का सुंदर दिग्दर्शन कराया। इब्सन शैली के समस्याप्रधान गद्य नाटकों की दिशा में आपकी रचनाएं गुजराती नाटक तथा एकांकी के स्वस्थ आरंभ की द्योतक हैं। 'मत्स्यगंधा अने गांगेय अने बीजा नाटको', 'मालादेवी अने बीजा नाटको' तथा 'शकुंतला रसदर्शन' आपकी नाट्य कृतियां हैं।

उमाशंकर जोशी—(1911-) आधुनिक गुजरात के अग्रगण्य कवि एवं विद्वान। कथा, नाटक, निबंध तथा आलोचना के क्षेत्र में प्रमुख स्थान। तीन दशक से अधिक समय तक गुजराती साहित्य में प्राध्यापक। संप्रति गुजरात विश्वविद्यालय के उपकुलपति हैं। 'संस्कृति' मासिक के संपादक। दो वर्ष के लिए गुजरात साहित्य परिषद् के प्रधान बने। इस वर्ष संसद की राज्यसभा में राष्ट्रपति द्वारा मनोनीत सदस्य हैं। आपके काव्य-संग्रह 'निशीथ' पर भारतीय ज्ञानपीठ का पुरस्कार मिल चुका है। आपने दस काव्य-कृतियां, दो कथा-संग्रह, एक उपन्यास, पांच आलोचनात्मक लेख-संग्रह, 'शाकुंतल' तथा 'उत्तर रामचरित' का अनुवाद, दो एकांकी संग्रह, एक निबंध संग्रह, तथा पद्य नाटक की दिशा में दो प्रयोगात्मक

संवाद काव्य-संग्रह प्रदान किये। 'सापना मारा' तथा 'शहीद' आपके एकांकी-संग्रह हैं। पहला संग्रह लेखक को प्रादेशिक भाषा की यथार्थवादी एकांकी कला की दृष्टि से प्रमुख साहित्यकार सिद्ध करता है।

दुर्गेश शुक्ल—(1911-) गुजराती साहित्य में एम. ए.। कुछ वर्षों तक माध्यमिक विद्यालय में शिक्षक। संप्रति लेखनजीवी साहित्यकार। कथा, कविता तथा नाटक आपकी सृजन प्रतिभा के प्रमुख साहित्य रूप हैं। एक उपन्यास, तीन कथा-संग्रह तथा दो काव्य कृतियों के लेखक नाट्य संग्रह एक असाधारण-सा प्रकाशन है। 'पृथ्वीना आंसु', 'हैये भार', 'उत्सर्विका', 'उल्लसिका' आदि उक्त संग्रह के प्रमुख नाटक हैं। आपने विदेशी नाटकों का अनुवाद भी किया है। स्कूल-कालेज के विद्यार्थियों में आपके नाटक बहुत लोकप्रिय हैं।

चुनीलाल मड़िया—(1922-1968) वाणिज्य के स्नातक होते हुए भी पत्रकार का व्यवसाय पसंद किया। कुछ वर्ष युनाईटेड स्टेट्स इंफोरमेशन सर्विस में कार्य किया। अंत में वहां से मुक्त होकर 'रूमि' मासिक प्रारंभ किया। साहित्य सृजन विद्यार्थीकाल से ही आरंभ किया। सर्वप्रथम 'घुघवंतापूर' नामक कथा-संग्रह से कथाकार के रूप में प्रसिद्ध हुए। तत्पश्चात उपन्यास, नाटक, एकांकी, कविता, आलोचना, निबंध आदि विविध साहित्यिक विधाओं को अपनी लेखनी का स्पर्श दिया। मध्य सौराष्ट्र की लोकभाषा की कथा, नाटक, उपन्यास आदि में किये गये प्रयोग तथा लोकजीवन का यथार्थ चित्रण आपकी विशेषता थी। आपके लगभग दस कथा-संग्रह तथा दस उपन्यास हैं। 'रंगदा', विषविमोचन्', 'रक्ततिलक' आदि आपके एकांकी-संग्रह हैं। आपने तीन त्रिअंकीय नाटक भी लिखे, जिनमें दो प्रहसन हैं।

पुष्कर चंदरवाकर—(1920–) एम. ए. करके अध्यापन व्यवसाय चुना। संप्रति सौराष्ट्र विश्वविद्यालय में लोक साहित्य के रीडर हैं। कथा, उपन्यास एवं एकांकी के लेखक। लोक-साहित्य के संशोधन तथा संपादन में रुचि होने के कारण कई वर्षों से क्षेत्र कार्य कर रहे हैं। आपकी प्रकाशित रचनाओं में एक से अधिक कथा-संग्रह, उपन्यास तथा लोक-साहित्य का संपादन भी शामिल हैं। 'पियरनो पडोशी' तथा 'यज्ञ' आपके दो एकांकी-संग्रह हैं।

पन्नालाल पटेल (1912-) मैट्रिक तक भी शिक्षा प्राप्त न कर सके किंतु ईशानकोण, राजस्थान के पास अपने प्रदेश की पृष्ठभूमि पर आधारित

आंचलिक उपन्यासों से गुजरात को मुग्ध करने वाले आधुनिक गुजरात के शक्ति-शाली सृजक। आपकी 'वळामणा' तथा 'मकेलनीव' कहानियों ने प्रथम वर्षा से उठती हुई धरती की भीनी सुगंध का गुजरात को अनुभव कराया। 'मानवीनी भवाई' की कथा त्रिपुटी आपकी प्रतिनिधि रचना मानी जायेगी। विशिष्ट लेखन पर आपको रणजीतराम स्वर्णपदक प्राप्त हुआ। अनेक उपन्यास तथा कथा-संग्रहों के इस लेखक ने 'जमाई राज' तथा 'ढोलियां साग सीसमना' नामक दो नाट्य कृतियां भी प्रदान की हैं। प्रस्तुत संग्रह का नाटक आपके आगामी संग्रह में से लिया गया है।

जयंती दलाल––(1909-1970) राष्ट्रीयता स्वतंत्रता आंदोलन में भाग लेने के कारण ग्रेजुएट न हो सके। स्वतंत्रता के पश्चात समाजवादी कार्यकर्ता एवं 'बिखरे मोती' चलचित्र के अभिनेता तथा निर्माता बनने के पश्चात पत्रकार, प्रकाशक एवं प्रेस संचालक बने। 'रेखा' मासिक का संपादन तथा 'गति' ग्रंथमाला के प्रकाशन से गुजराती साहित्य में नवीन आभा दृष्टिगोचर हुई। दो उपन्यास, अनेक कथा-संग्रह, दो निबंध संग्रह, रंगभूमि एवं चलचित्र संबंधी दो पुस्तकों के उपरांत आपने चार एकांकी-संग्रह एवं एक नाटक की रचना की। आपने पंद्रह विदेशी नाटकों के अनुवाद किये हैं, जिनमें टालस्टाय का विश्व-प्रसिद्ध उपन्यास 'वार एंड पीस' तथा आरवेल का 'एनिमल फार्म' है। व्यंग्य लेखन आपके अधिक अनुकूल था। 'जवनिका', 'अवतरण', 'प्रवेश बीजो', 'त्रीजो प्रदेश' तथा 'चोथो प्रवेश' आपके नाट्य प्रकाशन हैं।

कृष्णलाल श्रीधराणी––(1911-1960) राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात अमेरिका जाकर शोधकर्त्ता की उपाधि ग्रहण की। वहां कई वर्ष रहकर पत्रकार एवं लेखक के रूप में प्रसिद्ध हुए। भारत, गांधीजी एवं आपके अहिंसक स्वतंत्रता संग्राम की परिचायक 'माई इंडिया', 'माई अमेरिका', 'वार विदाउट वायलेंस' जैसी पांच पुस्तकें हैं जो आपने अमेरिका में लिखीं। ये पुस्तकें अंग्रेजी में लिखी हुई हैं। स्वदेश वापस आकर दिल्ली में बहुत-से देशी तथा अमेरिकी समाचार-पत्रों के प्रतिनिधि के रूप में कार्य किया। 1960 में आपकी असमय मृत्यु हुई। आपकी प्रतिभा कवि एवं नाटककार के रूप में प्रस्फुटित हुई। काव्य-संग्रह 'कोडियां' तथा 'मोरनां ईडा', 'वडलो' और 'पद्मनी' नाटक आदि अधिकांश साहित्य सृजन अमेरिका जाने से पूर्व का है। एकांकी-संग्रह 'पियोगोरी'

भारत आने के पश्चात का प्रकाशन है। प्रस्तुत संग्रह का नाटक उसी में से लिया गया है।

गुलाबदास ब्रोकर—(1909-) व्यवसाय शेयर दलाल। संप्रति स्वेच्छा से निवृत्ति। स्नातक होने के पश्चात राष्ट्रीय संग्राम में जेल गये। यहीं से आपकी लेखन प्रवृत्ति प्रारंभ हुई, जो आज तक सक्रिय है। साहित्य के क्षेत्र में आपकी प्रतिष्ठा कहानीकार के रूप में हुई। छह कथा-संग्रह के उपरांत आपने एक काव्य-संग्रह तथा दो आलोचनात्मक निबंध संग्रहों की रचना की। नाटक के क्षेत्र में आपकी लेखनी का प्रसार श्री धनसुखलाल के साथ लिखे गये नाटक 'धूम्रसेर' तथा स्वतंत्र एकांकी-संग्रह 'ज्वलंत अग्नि' में मूर्त्त होता है। आप कई वर्षों तक भारतीय पी. इ. एन. के मंत्री रहे तथा कई वर्षों से गुजराती साहित्य परिषद् के मंत्री एवं उसके प्रमुख पत्र 'परख' के संपादक भी हैं।

शिवकुमार जोशी--(1916-) अपने शहर अहमदाबाद में स्नातक होकर वर्षों से कलकत्ते में रहकर कपड़े का व्यापार कर रहे हैं। नाटक तथा अभिनय में रुचि आपको विद्यार्थी-काल से ही थी। बाद में अवेतन रंगमंच के प्रति आकर्षित हुए। लेखन वृत्ति ने आपको नाट्य लेखन की ओर मोड़ा। आपका प्रसिद्ध साहित्य रचनाकाल सन 1950 से प्रारंभ हुआ। आज तक लिखे गये लंबे पूर्ण नाटक तथा एकांकी-संग्रहों की संख्या लंबी होती जा रही है। 'सुमंगला', 'अंगारभस्म', 'सांध्यदीपिका', 'पूर्वांकुर', 'पांच मनाना पारेवां', 'अनंत साधना', 'सोनानी नी हांसडी रूपानी हांसडी' इत्यादि कुछ प्रसिद्ध रचनाएं हैं। आप नाटक के साथ-साथ कथाएं तथा उपन्यास भी लिखते और प्रकाशित करते रहे हैं।

आदान-प्रदान

प्रकाशित पुस्तकें

		रु.
1.	इक्कीस बंगला कहानियां--अरुण कुमार मुखोपाध्याय (संपा.)	14.25
2.	अतीत के दिन--के. पी. केशव मेनन	28.50
3.	काठनिबारी घाट—महिम बरा	12.00
4.	कपिली के आर-पार—नवकांत बरुआ	8.00
5.	नये हिंदी लघु नाटक—नेमिचंद्र जैन (संपा.)	14.00
6.	पूर्ण कंभ—रानी चंद	10.00
7.	आखिर जो बचा—बुन्चि बाबू	9.50
8.	जीवन एक नाटक—पन्नालाल पटेल	16.00
9.	उर्दू कहानियां—रज़िया सज्जाद ज़हीर (संपा.)	19.50
10.	गति और रेखा—विद्यानिवास मिश्र (संपा.)	9.50
11.	किनु ग्वाले की गली—संतोष कुमार घोष	9.00
12.	इछामती—विभूतिभूषण वंद्योपाध्याय	26.00
13.	सुदामा के चावल—श्रीपाद कृष्ण कोल्हटकर	12.00